डा० पी० आदेश्वर राव

जन्म-स्थान—गुन्टूर [आ० प्र०]

जन्म-तिथि—१६३६ ।

शिक्षा—एम० ए० [हिन्दी प्रथम श्रेणी] काशी हिन्दी विश्वविद्यालय । पी-एच० डी० । श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय [तिरुपति] विषय : हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन ।

प्राध्यापन—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा से संचालित हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग में पाँच वर्ष तक प्राध्यापक । आजकल आन्ध्र विश्वविद्यालय वाल्टेर में हिन्दी विभाग में प्राध्यापक ।

प्रकाशित पुस्तकें [१] अन्तराल [कविता-संग्रह । भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत ।]

[२] तुलनात्मक शोध और समीक्षा ।

[३] हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन ।

[४] कविपंत और उनकी छायावादी रचनाएँ ।

लेख : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित ।

शीघ्र प्रकाश्य कृतियाँ : [१] तेलुगु की नई कविता [हिन्दी अनुवाद]

[२] चुने तेलुगु के पौराणिक नाटक का अनुवाद ।

संप्रति शोध कार्य : भारतीय तेलुगु लेखक कोश

मूल्य : बारह रुपये पचास पैसे

डा० पी० आदेश्वर राव

जन्म-स्थान—गुन्टूर [आ० प्र०]

जन्म-तिथि—१६३६।

शिक्षा—एम० ए० [हिन्दी प्रथम श्रेणी] काशी हिन्द विश्वविद्यालय। पी-एच० डी०। श्री वेंकटेश्व विश्वविद्यालय [तिरुपति] विषय: हिन्दी औ तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन।

प्राध्यापन—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा से सचालित हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एव अनुसधान विभाग मे पाँच वर्ष तक प्राध्यापक। आजकल आन्ध्र विश्वविद्यालय वाल्टेर मे हिन्दी विभाग मे प्राध्यापक।

प्रकाशित पुस्तकें [१] अन्तराल [कविता-सग्रह। भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत।]
[२] तुलनात्मक शोध और समीक्षा।
[३] हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन।
[४] कविपत और उनकी छायावादी रचनाएँ।

लेख: विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित।

शीघ्र प्रकाश्य कृतियाँ: [१] तेलुगु की नई कविता [हिन्दी अनुवाद]
[२] खून [तेलुगू के पौराणिक नाटक का अनुवाद।

संप्रति शोध कार्य: भारतीय तेलुगु लेखक कोश

मूल्य: बारह रुपये पचास पैसे

कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ

डा० पी० आदेश्वर राव,
एम० ए०, पी-एच० डी०
अध्यक्ष हिन्दी-विभाग,
आन्ध्र विश्वविद्यालय,
वाल्टेर [आं० प्र०]

प्रगति प्रकाशन
आ ग रा–३
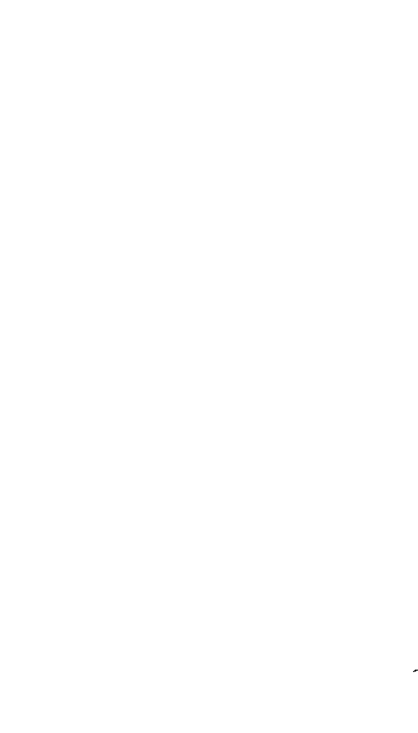
में आवश्यक पाया, वहाँ मैंने विषय के अनुरूप भावात्मक शैली से काम लिया है। पंत जी जैसे भाव-प्रवण कवि की विवेचना नीरस तर्कपूर्ण शैली से सम्भव नहीं। यथास्थान मैंने अंग्रेजी उद्धरणों एवं पद्यांशों को गद्य एवं पद्य में अनूदित करके अपना काम चलाया।

इस प्रबन्ध में कवि के काव्य की पृष्ठभूमि, कवि के व्यक्तित्व का क्रमिक विकास, स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, कवि का काव्य-शिल्प, छन्द एवं संगीत, भाव-पक्ष की विभिन्न दिशाओं का विवेचन करने के साथ ही कवि को विश्व के ख्याति प्राप्त महान् स्वच्छन्दतावादी कवियों के परिपार्श्व में रखकर मूल्यांकन करने की चेष्टा की गयी है। पंत-काव्य के अनुशीलन में प्रस्तुत प्रबन्ध यदि किंचित् योग दे सका तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा।

मैं उन सभी विद्वद्वर गुरुजनों, लेखकों का आभार स्वीकार करता हूँ जिनसे किसी न किसी रूप में उपकृत हुआ हूँ। यशस्वी लेखकों की सूची लम्बी है, फिर भी कुछ महानुभावों का नामोल्लेख करना युक्ति संगत प्रतीत होता है जिनमें श्रद्धेय गुरुवर्य डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, डा० राजपति दीक्षित एवं डा० श्रीकृष्णलाल प्रमुख हैं। लेखकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० नगेन्द्र, आचार्य नन्द-दुलारे वाजपेयी, पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी, डा० प्रेमशंकर, डा० बच्चन का विशेष आभार स्वीकार करता हूँ, जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से कवि एवं काव्य के अध्ययन एवं अनुशीलन का एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदान किया है।

—पी० आदेश्वर राव

है। उनके अनुसार शब्दों का व्यक्तित्व, भावना और संगीत के 'राग' से व्यक्त होता है। राग के द्वारा ही शब्द परस्पर सम्बन्धित होते हैं, अपना तारतम्य अथवा सामंजस्य पाते हैं। कवि के शब्दों में 'राग ध्वनि-लोक की कल्पना है। जो कार्य भावजगत में कल्पना करती, वह कार्य शब्द-जगत में राग, दोनों अभिन्न हैं।……राग ध्वनि लोक निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है।……राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिंचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते, हमारा हृदय उनके हृदय में पहुँचकर एक भाव हो जाता है।……प्रत्येक शब्द एक-एक कविता है, लता और मलद्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दों की कविता को खा-खाकर बनती है[1]। इस तरह कवि के लिए शब्द एक सजीव सृष्टि है। शब्द एक दूसरे से घुल-मिलकर, अपने अस्तित्व का विसर्जन कर, महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। वे अपनी व्यक्तिगत सत्ता खोकर काव्य के रसात्मक व्यक्तित्व में परिणत हो जाते हैं। कवि कहता है-'शब्दों के भिन्न-भिन्न कण एक होकर रस की धारा के स्वरूप में बहने लगते, उनकी संगठाहट में गति आ जाती, हम केवल रस की धारा को ही देख पाते हैं, कणों का हमें अस्तित्व ही नहीं मिलता।'[2] राग द्वारा शब्द रस बन जाते हैं, अर्थ द्वारा भाव। शब्द और राग की तरह शब्द और अर्थ भी अभिन्न हैं, गिरा अरथ जल-बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।[3] पंत की धारणा भी इससे भिन्न नहीं। 'कविता में शब्द और अर्थ की अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति में डूब जाते हैं।'[4]

राग के [illegible]

३११
साहित्य

विषयानुक्रमणिका

पूर्व-पीठिका

किसी कवि पर उसकी सामयिक राजनीतिक सामाजिक एवं साहित्यिक स्थितियों का प्रभाव पड़ना तो अनिवार्य होना ही है, साथ ही काव्य-परम्पराओं की अमिट छाप भी रहती है। तभी तो कलाकार एक ओर परम्परा और दूसरी ओर देशकाल की अवहेलना नहीं कर सकता। कहीं-कहीं तो कवियों की कृतियाँ युग का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं। यथा कालिदास की कृतियों में भारत के स्वर्ण युग का पूर्ण वैभव प्रतिबिम्बित है, उसी प्रकार होमर के काव्य में तत्कालीन ग्रीक-संस्कृति एवं सभ्यता का जीता-जागता स्वरूप चित्रित है। यह निर्विवाद है कि कवि अपने अतीत से प्रेरणा ग्रहण करता है। हमारे कवि के पूर्व भारतीय काव्य की अनन्त परम्परा सतत स्पन्दमान होती रहती है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, जयदेव, विद्यापति, सूर, तुलसी, मीरा, बिहारी भारतेन्दु प्रभृति महाकवि इस परम्परा के आलोक-स्तम्भ कहे जा सकते हैं।

यद्यपि भारत परतन्त्रता की शृंखला में युगों से जकड़ा हुआ था, तथापि १९वीं शताब्दी के अन्त तक देश में राष्ट्रीयता की भावना दृढ़ हो चुकी थी। सन् १८५७ का गदर भारतीय राष्ट्रीय भावना का ही एक विस्फोट मात्र कहा जा सकता है। सामाजिक सुधार के आन्दोलनों के मूल में देश प्रेम की सक्रिय भावना ही कार्य कर रही थी। इन परिस्थितियों ने सन् १८८५ में कांग्रेस संस्था को जन्म दिया। आरम्भ में कांग्रेस की रूपरेखा अधिक उदार थी। किन्तु आगे चलकर उसके कार्य क्षेत्र में तिलक के पदार्पण करने के उपरान्त भारत का पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्ति ही उसका एकमात्र लक्ष्य बन गया। बीसवें शतक के आरम्भ तक भारत में अदम्य उत्साह और चेतना की लहर दौड़ पड़ी। क्या राजनीतिक, क्या सामाजिक, क्या भारत माता के अनेकानेक लाल अप्रतिहत प्रयास
... राष्ट्रीय भावना ही प्रेरक शक्ति थी।
गांधी का पदार्पण हुआ और उन्होंने
त्व के बल पर उन्होंने सत्य एवं
फलस्वरूप सन १९०९ में मिण्टो-

अस्तु, नवोदित कवियों के पथ-प्रदर्शन का कार्य पाठक जी ने किया—यह निर्विवाद है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी एक तीखे विनोदशील व्यंग्यकार, पुष्टगद्य-लेखक, कवि एवं एक सफल आलोचक थे। सन् १९०३ में 'सरस्वती' का सम्पादकत्व ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने खड़ी बोली का परिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया। द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से मैथिलीशरण गुप्त ब्रजभाषा को छोड़ कर खड़ी बोली में अपनी रचनाएँ करने लगे। पर जयशंकरप्रसाद पर ब्रजभाषा का सम्मोहन था, फलतः उनका प्रारम्भिक साहित्य-निर्माण ब्रजभाषा में ही हुआ। उन्होंने 'प्रेम-पथिक' (खण्ड-काव्य) की रचना पहले ब्रजभाषा में ही की थी। उधर गुप्तजी की खड़ी बोली की रचनाओं को लोकप्रियता मिलने लगी। उनके 'रंग में भंग' (प्रथम संस्करण सन् १९०९) और 'जयद्रथ-वध' (प्रथम संस्करण सन् १९१०) नामक खण्ड-काव्य भी प्रकाशित हो चुके थे। गुप्तजी भाषा एवं भाव दोनों को योग दे रहे थे। द्विवेदी युग की आधुनिकता इतिवृत्तात्मक थी, उसकी अभिव्यक्ति नवीन होते हुए भी उसमें काव्य वस्तु पुरानी थी। १९वीं शताब्दी के बंगाली महाकवि माइकेल मधुसूदनदत्त की प्रगति द्विवेदी-युग की खड़ी बोली के अनुकूल पड़ी। अतः उनके 'विरहिणी-ब्रजांगना', 'मेघनाद-वध' और 'पलासी-युद्ध' आदि काव्यों का अनुवाद गुप्तजी ने किया और इस प्रयत्न में उनको अत्यन्त सफलता मिली।

गुप्तजी पर राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का असामान्य प्रभाव पड़ा। उनके काव्य ने अतीत गौरव, राष्ट्रीय भावना, आदर्श एवं मानवतावादी भावों को ग्रहण किया। उनके हरिगीतिका छन्द को पर्याप्त ख्याति मिली और जनता के बीच रह कर काव्य-निर्माण करते गये। उन्होंने 'साकेत' में विश्व-बन्धुत्व और मानवता का सन्देश दिया और नारी जाति की मर्यादा को ऊँचा उठाने के लिए उर्मिला को प्रधान पद प्रदान किया। उनकी 'भारत-भारती' हमारे देश प्रेम साहित्य की अक्षय कृति है। इसी कारण गुप्त जी को द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि होने का श्रेय प्राप्त है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने प्राचीन आख्यानों के सहारे काव्य-रचना प्रस्तुत की। उनके 'प्रियप्रवास' को [illegible] [illegible] भाषा [illegible] संस्कृतगर्भित, [illegible] और [illegible] है। [illegible] एक [illegible] है, [illegible] [illegible] है। [illegible] के 'प्रियप्रवास' की भाषा संस्कृत के [illegible] नहीं [illegible] है। [illegible] हिन्दी की रचनाओं में संस्कृत [illegible] का [illegible] नहीं है। इस प्रकार हरिऔध का

१ [illegible] [illegible] पृष्ठ १११, द्वितीय संस्करण।

एक ओर तो जटिल (संस्कृत-पद-गुम्फित) भाषा में कवि हैं और दूसरी ओर चलती सहज भाषा के।

यद्यपि द्विवेदी युग में काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली को प्रतिष्ठा हो चुकी थी, तो भी ब्रजभाषा की प्राचीन काव्य-धारा अन्तःसलिला की भाँति क्षीण रूप में प्रवाहित होती रही। इस परम्परा का पालन करने वाले कवियों में जगन्नाथ दास रत्नाकर, राय देवीप्रसाद पूर्ण, सत्यनारायण कविरत्न आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रत्नाकर जी ने अपने 'उद्धवशतक' में भक्ति और रीतिकालीन विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर समन्वय किया। यहाँ ध्यान देने का विषय यह है कि स्वयं जयशंकरप्रसाद जी की मूल काव्य-प्रेरणा एवं प्रारम्भिक कृतियों का माध्यम ब्रजभाषा ही थी।

द्विवेदी युग में प्रधानता इतिवृत्तात्मक काव्य की रही, किन्तु उसके लगभग अन्त में काव्य इतिवृत्तात्मकता से भावपूर्ण कविता की ओर, अलंकार, रस, गुण आदि से मानव-जीवन की उदार वृत्तियों और भावनाओं की ओर और प्रकृति-वर्णन में मन कल्पित दृश्यों की अभिव्यंजना की ओर विकसित हुआ। गीतिकाव्य की रचना अधिकतर होने लगी और इस युग के मुख्य कवि भी इस ओर आकृष्ट हुए। गुप्त जी का 'झंकार' (गीतिकाव्य संग्रह) इसका स्पष्ट प्रमाण है। प्रसाद जी भी गीतिकाव्य की ओर झुके और एक भाव-प्रवण साहित्यिक होने के कारण उनके काव्य का विकास गीतिकाव्य के माध्यम से ही हुआ। उनका प्रथम भावात्मक मुक्तक 'चित्राधार' में (ब्रजभाषा में लिखित सन् १९०९-११) संगृहीत हैं। उसकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

नीरव प्रेम

"प्रथम आपुन क्यों अधरान मे,
रहत है तऊ गूंजत प्रान मे,
तिमि कहौ तुम है चुप धीर सों,
विमल नेह-कथान गम्भीर सों।" —चित्राधार

प्रसाद जी का 'कानन-कुसुम' सन् १९०९-१७ तक की कविताओं का संग्रह है। इसमें ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों की कवितायें हैं किन्तु खड़ी बोली में उनके गीति-काव्य (lyric poetry) का प्रथम रूप 'झरना' के रूप में प्रकाशित हुआ। "गुप्त जी की साहित्यिक आधुनिकता माइकेल और नवीनचन्द्र सेन की दिशा में थी, प्रसाद और उनके बाद के छायावादी कवियों की आधुनिकता रवीन्द्रनाथ की दिशा में।"

लगभग १९१५ तक सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला भी काव्य-क्षेत्र में उतरे और उनका व्यक्तित्व क्रान्तिकारी था। उनका अधिक विद्रोह छन्द-सम्बन्धी था। लय के आधार पर उन्होंने मुक्त छन्द का निर्माण किया। भाषा के प्रयोग में निराला जी सर्वदा स्वतन्त्र रहे। प्रवाह और माधुर्य उनकी कविता के मुख्य गुण हैं। 'परिमल' नामक काव्य संग्रह में 'विधवा', 'भिक्षुक', और 'सन्ध्या सुन्दरी' आदि

कवितायें अधिक लोकप्रिय हुई हैं। इस प्रकार निराला जी द्विवेदी युग से काव्य संस्कार प्राप्त करके छायावाद के स्तम्भ बन गये।

ऐसी परिस्थितियो मे सुमित्रानन्दन पत वाणी की वीणा कर में लेकर हिन्दी-काव्य-प्रांगण मे अवतरित हुए। उनकी वीणा-ध्वनि मे मिठास थी, तारो में कोमल भाव-प्रकम्पन था, किशोर-कण्ठ की कोमलता एव पावनता उसकी आत्मा थी। इसे प्रगीत-काव्य का सुन्दरतम उदाहरण के रूप मे पाठको ने स्वीकार किया। इसके पूर्व हिन्दी पाठक ऐसी मिठास से अनभिज्ञ थे और पत की ओर उनकी अभिरुचि का बढ़ना स्वाभाविक ही था। 'वीणा' के उपरान्त 'उच्छ्वास', 'ग्रन्थि' और 'पल्लव' प्रकाशित हुए। इन काव्य-ग्रन्थो की स्वच्छता, कोमलता एव रमणीयता से सभी परिचित हो चुके थे और पंत सभी नवोदित साहित्यिको का आदर्श बन गया था। पत के काव्य ने पाठको और रसिको पर एक आकर्षण का जाल फैला दिया। कवि के काव्य-शिल्प, चित्रांकन, सगीत-मधुर-रागिनियाँ एव कोमलता हिंदी-काव्य-ससार के लिए नितान्त नवीन थे। 'वीणा' की अभिनव कोमल आदर्शवादिता और तरल बाल-भावना से आरम्भ कर 'उच्छ्वास' की ईषत् वैयक्तिक प्रेमचर्चा मे किशोरवय की सुन्दर झाँकी देखते हुए हम 'ग्रन्थि' मे वियोग या विच्छेद की एक मर्मपूर्ण अनुभूति तक पहुँचते है। "पल्लव" की रचना इस वैयक्तिक अनुभूति के अवसाद से दूर होकर अतिशय सजीव कल्पना-सृष्टि का रूप ग्रहण करती दिखाई देती है। 'परिवर्तन' मे आकर हम जगत और जीवन के सम्बन्ध मे कवि की मनस्वी धारणायें अत्यन्त सुन्दर रूपको के आवरण मे देख पाते हैं। ये रूपक उन सुन्दर प्रस्तर खण्डो के सदृश हैं, जिन की सहायता से कवि अपने आगामी विशाल-निर्माण की भूमिका बाँधता जान पड़ता है। इसी समय हम हिन्दी-प्रगीत की उच्चतम परिणति की कल्पना करने लगे थे"[१]। सन् १९२६ से ३१ तक की रचनाओ को पत जी ने 'गुञ्जन' नामक काव्य ग्रन्थ में संगृहीत किया और उसके साथ 'ज्योत्स्ना' (भावात्मक नाटक) का प्रकाशन भी किया। इन रचनाओं मे कवि अपने को संयमित करने लगा और भाव की तरलता मे बाधा उपस्थित हुई। कवि भावुक से कहीं अधिक बौद्धिक होता गया। उनका 'युगान्त' छायावाद युग के अंत का सूचक है। इसके पश्चात् पंत जी भौतिक, राजनीतिक एव आध्यात्मिक धरातलों को निरन्तर पार करते हुए चले। परन्तु उनकी उत्तरकालीन कृतियों में आरंभिक काल की कृतियों की-सी भावात्मकता, सरलता एवं अनुभूति प्रवणता नहीं मिलती।

इस प्रकार प्रसाद, पंत एव निराला हिन्दी के छायावाद काल के उन्नत कीर्ति-स्तम्भ हैं।

---

१ 'युग और साहित्य'—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० १८२, द्वितीय संस्करण।
२ आधुनिक साहित्य—नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ३१ द्वितीय संस्करण।

प्रथम परिच्छेद

जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व

जीवनवृत्त और साहित्य

शिक्षा प्राप्त किया । वे सन् १९१८ में अपने बड़े भाई के साथ काशी के जयनारायण हाई स्कूल में भर्ती हुए । सन् १९१८-१९ उनके स्कूल जीवन का अन्तिम वर्ष था । सन् १९१९ में उन्होंने द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक पास किया । इस समय तक उन्होंने बंगला एवं अंग्रेजी भाषा सीख ली और उनके साहित्य का अध्ययन भी करने लगे थे ।

२१ जुलाई, सन् १९२१ को पंत प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में भर्ती हुए । वहाँ उन्होंने संस्कृत, इतिहास और अर्थशास्त्र आदि विषय ग्रहण किये । नवम्बर में होस्टल के कवि-सम्मेलन में पंत ने 'स्वप्न' शीर्षक कविता पढ़ी—

"बालक के कम्पित अधरों पर
किस अतीत स्मृति का मृदुहास ?
जग की इस अविरल निद्रा का
करता नित रह रह उपहास ?
उस स्वप्नों की स्वर्ण सरित का
सजनि ! कहाँ शुचि जन्म स्थान ?
मुसकानों में उछल उछल मृदु
बहती वह किस ओर अजान ?"

पल्लविनी, पृ० २९३ संस्करण ।

विद्वानों ने तरुण कवि की प्रशंसा की श्रोताओं ने उसे बहुत पसन्द किया । पंत इस समय तक एक अल्पप्रसिद्ध कवि हो चुके थे । प्रोफेसर शिवधार पाण्डेय सबसे अधिक प्रभावित हुए और उन्होंने "शेक्सपियर" की ग्रन्थावली उन्हें भेंट की । पंत का अधिक समय साहित्य का अध्ययन करने और कविता लिखने में व्यतीत होता था शेली और कीट्स की कवितायें उन्हें अत्यन्त प्रिय थी । सन १९२० में पंतने होस्टल के एक कवि-सम्मेलन में 'छाया" शीर्षक कविता पढ़ी तो सभापति "हरिऔध" जी ने प्रसन्न होकर माला उनके गले में डाल दी । इन दिनों पंत का निकट सम्बन्ध प्रो० शिवधार पाण्डेय के साथ रहा । पाण्डेय जी सदा उन्हें प्रोत्साहित करते थे । सन् १९२२ असहयोग आन्दोलन का वर्ष था । गाधी जी प्रयाग आये और विद्यार्थियों पर उनके भाषण का प्रभाव अधिक पड़ा । राजनैतिक विषयों में विशेष अभिरुचि न रखने पर भी अन्य विद्यार्थियों के साथ पंत को कालेज छोड़ना पड़ा । इस प्रकार वे विश्व-

कौसानी नामक गाँव में हुआ। उनके पिता का नाम पं० गंगादत्त पंत और माता का सरस्वती देवी था। बालक के जन्म के छह घण्टे के उपरान्त माता का देहान्त हो गया। पंत के पिता कौसानी के टी-गार्डन्स के मैनेजर थे। पंत के तीन बड़े भाई और चार बहनें थी। मातृहीन बालक पंत का पालन-पोषण उसकी फूफी ने किया। माँ के अमृतमय दूध से वंचित शिशु डब्बेवाले दूध पर ही बढ़ा। उस का सहज अबोध बाल-हृदय हिमालय के स्वच्छ धवल शिखरों को प्रातः सायं सुवर्णमय होते देख विस्मय विमुग्ध हो उठता था। चार पांच साल की अवस्था मे बालक को एक छोटे स्कूल मे भर्ती किया गया। वह हर रोज स्कूल जाता और पढ़ने मे बड़ा उत्साह दिखलाता। बड़े भाई अपनी पत्नी के मनोरंजन के लिये प्रायः 'मेघदूत' को गा गाकर सुनाते थे। बालक सुमित्रानंदन उसे बड़े ध्यान से सुनता था, भले ही उसी समय उसे छन्द, राग-ताल एवं अर्थ का कोई ज्ञान न था। उसके भाई के एक मित्र गज़ल गाया करते थे। सुमित्रानन्दन को गजल की लय बहुत पसन्द आयी और सात साल की अवस्था मे ही उन्होंने कागज पर एक गजल लिख डाली। सन् १६०६ मे सुमित्रानन्दन ने अपर प्राइमरी कक्षा ४ की परीक्षा पास की।

११ साल की अवस्था मे (सन् १६११) सुमित्रानन्दन अल्मोड़े के गवर्नमेन्ट हाई स्कूल के चौथे दर्जे में भर्ती हुए। उस समय 'सरस्वती' मे प्रकाशित होनेवाली मैथिलीशरण की कविताओं को वे बड़े चाव से पढ़ते थे। १५ साल की अवस्था में उन्होने अपने फुफेरे भाई को एक पत्र रोला छन्द मे लिखा। सन् १६१६ मे उनकी भेंट एक पंजाबी साधु से हुई और उससे वे बहुत प्रभावित हुए। उन्हें साधु का जीवन बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होने लगा। फलतः वे एक ओर साधुओं के सत्संग में रहने लगे। और दूसरी ओर उनका सहज साहित्यानुराग स्वयमेव विकसित हो रहा था। नाटककार गोविन्द बल्लभ पंत के भतीजे श्यामाचरण पंत 'सुधाकर' (१६१६-१७) नामक एक हस्तलिखित पत्रिका निकालते थे। सुमित्रानन्दन उसमे अपनी कवितायें देने लगे। उनको अपने कवि-व्यक्तित्व पर विश्वास बढ़ने लगा और उन्होंने 'छन्द प्रभाकर' 'काव्य-प्रभाकर' आदि शास्त्र ग्रन्थों के साथ साथ मध्यकालीन कवियों का अध्ययन किया। मतिराम और सेनापति उनके कवि प्रिय कवि थे। वे सन् १६१६ में कविता लिखने मे ही अधिक व्यस्त रहे और प्रतिदिन दो-दो कवितायें लिख डालते थे। उस वर्ष की जाड़ों की छुट्टियों मे कौसानी चले गये और वहीं उन्होंने "अल्मा", 'हिमांकन' आदि कवितायें लिखीं। इसी समय उन्होंने 'हार' नामक एक उपन्यास भी लिखा (उसकी पांडु-लिपि के गुमशुदा पर उनके मित्र-मण्डली ने इस उपन्यास को प्रकाशित करने का निश्चय किया)। सन् १६१७ मे पंत ने

मिडिल पास किया। वे सन् १६१८ में नवीं दर्जा पासकर काशी के जयनारायण स्कूल में भर्ती हुए। सन् १६१८–१६ उनके स्कूल-जीवन का अन्तिम वर्ष था। सन् १६१६ में उन्होंने दूसरे डिविजन में मैट्रिक पास किया। इस समय तक उन्होंने बंगाली अच्छी तरह सीख ली और उसके साहित्य का अध्ययन भी करने लगे थे।

२१ जुलाई, सन् १६२१ को पंत प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में भर्ती हुए। वहाँ उन्होंने संस्कृत, इतिहास और तर्कशास्त्र आदि विषय ग्रहण किये। नवम्बर में होस्टल के कवि-सम्मेलन में पंत ने 'स्वप्न' शीर्षक कविता पढ़ी—

"बालक के कम्पित अधरों पर
किस अतीत स्मृति का मृदुहास ?
जग की इस अविरत निद्रा का
करता नित रह रह उपहास ?
उस स्वप्नों को स्वर्ण सरित का
सजनि ! कहाँ शुचि जन्म स्थान ?
मुसकानों में उछल उछल मृदु
बहती वह किस ओर अजान ?"

पल्लविनी, पृ० २९३ संस्करण।

विद्वानों ने इसकी कवि की प्रशंसा की श्रोताओं ने उसे बहुत पसन्द किया। पंत इस समय तक एक लब्धप्रतिष्ठ कवि हो चुके थे। प्रोफेसर शिवधार पाण्डेय सबसे अधिक प्रभावित हुए और उन्होंने "शेक्सपियर" की ग्रन्थावली उन्हें भेंट की। पंत का अधिक समय साहित्य का अध्ययन करने और कविता लिखने में व्यतीत होता था शेली और कीट्स की कवितायें उन्हें अत्यन्त प्रिय थी। सन १६२० में पंतने होस्टल के एक कवि-सम्मेलन में 'छाया" शीर्षक कविता पढ़ी तो सभापति "हरिऔध" जी ने प्रसन्न होकर माला उनके गले में डाल दी। इन दिनों पंत का निकट सम्बन्ध प्रो० शिवधार पाण्डेय के साथ रहा। पाण्डेय जी सदा उन्हें प्रोत्साहित करते थे। सन् १६२२ असहयोग आन्दोलन का वर्ष था। गांधी जी के प्रभाव उनके और विद्यार्थियों पर उनके भाषण का प्रभाव अधिक पड़ा। राजनैतिक विषयों में विशेष अभिरुचि न रखने पर भी अन्य विद्यार्थियों के साथ पंत को कालेज छोड़ना पड़ा। इस प्रकार के विर-

विद्यालय की पढ़ाई से छुटकारा ग्रहण कर, कविता-सरस्वती की एकांत आराधना में लीन हुए। सितम्बर सन् १६२२ में इन्होंने "उच्छ्वास" शीर्षक कविता लिखी और अजमेर में उसे छपाया।

सन् १६२२ में "सरस्वती" के सम्पादक महोदय ने पंत की कविताओं को आग्रह-पूर्वक छापना प्रारम्भ किया। इस समय उन पर दुख की भावना काम कर रही थी। केवल भाव जगत् उनके नयनों के सम्मुख था। इस स्वप्न-दर्शी कवि पर दुख अपना श्यामल पट फैलाने लगा। प्रेम की असफलता से कवि अधिक निराश हुआ। धर्म की मूल-भूलैयों से वह गुजर चुका था। फलतः, वह आत्म-सान्त्वना के निमित्त दर्शन की ओर झुका। वह उपनिषद, रामकृष्ण, विवेकानन्द और रामतीर्थ के ग्रन्थों को अत्यन्त श्रद्धा से पढ़ने लगा। पाश्चात्य दार्शनिकों में काण्ट ने उसे अधिक प्रभावित किया। सन् १६२६ मे पंत के मँझले भाई का देहान्त हुआ और वे परिवार पर ६२००० रुपये का कर्ज़ छोड़ कर गये। पिता ने जायदाद बेचकर कर्ज़ अदा किया, किन्तु एक वर्ष के बाद वे भी चल बसे। अब परिवार का सारा आर्थिक ढांचा टूट गया। पहले पंत को पैसों की कोई कमी नहीं थी, अब एक ओर आर्थिक संकट और दूसरी ओर आत्म-मंथन। सन् १६२६ के आरंभ में ही चिन्ता के बोझ ने उनके स्वास्थ्य को चौपट कर दिया। उस समय वे उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद कर रहे थे। एक दिन दो बजे गर्मी मे बाहर निकले तो लू लग गई। १५ दिनों तक बड़े कष्ट में पड़े रहे। उन दिनों दिल्ली के सुप्रसिद्ध डाक्टर जोशी भरतपुर में रहते थे। उन्होंने पंत की परीक्षा की और उन्हें पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी। उन्होंने यह भी बताया कि प्लूरसी के लक्षण हैं, जो क्षय मे परिवर्तित हो सकती हैं। वे तीन मास तक डा० जोशी के यहां रहे। उनके स्वास्थ्य में यथेष्ट सुधार हो गया। उनका वजन ६८ पौण्ड से १३६ पौण्ड हो गया।

सन् १६३० के ग्रीष्म मे पंत पहाड़ लौट गये। स्वास्थ्य के अच्छे होने के साथ उनका दुखवाद, आशावाद मे परिणत होने लगा। यहीं उनकी भेंट कालाकांकर के राजा छोटे भाई कुँअर सुरेश सिंह से हुई। परिचय मित्रता में परिणत हुआ। सुरेशसिंह के अनुरोध से वे कालाकांकर चले गये। वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य और शान्त वातावरण उन के स्वभाव के अधिक अनुकूल था। उन्होंने गाँव से मिले हुए पलाश वन के बीच एक टीले पर बने हुए छोटे बंगले को अपने रहने के निमित्त चुना और उनका नाम 'नक्षत्र' रखा। इसी ' 'मे वे सन् १६४२ तक रहे और वहीं उन्होंने 'गुंजन', 'ज्योत्स्ना' ' अमर काव्यों की रचना की काला-

कौसर में रहकर उन्होंने [illegible] उनका सम्पर्क अधिक बढ़ाया। वे जनता के साथ उन्हीं लोगों से कम मिले थे। सुरेन्द्र और उनकी पत्नी प्रकाशवती दोनों ही उन्हें अपने बड़े भाई मानकर श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। इस समय पंत पर मार्क्स-वाद का प्रभाव पड़ा।

सन् १९४०–४२ के बीच वे कभी अल्मोड़ा में रहते थे तो कभी, प्रयाग में। सन् १९४० में उनकी मित्रता 'बच्चन' और नरेन्द्र शर्मा से हुई और वे 'बच्चन' के साथ बेलीरोड पर एक बंगले में रहते थे। सन् १९४२ में पंत नाटयकार उदयशंकर के सम्पर्क में आये और उनके साथ कानपुर, लखनऊ, आगरा और बम्बई भी गये। कुछ दिन वे पांडिचेरी में अरविन्द आश्रम में रहे। बाद में जब वे दिल्ली आये तो बीमार पड़ गये। ज्वर क्रमश: 'टायफाइड' में परिणत हो गया और वे डा० जोशी के अस्पताल में रहने लगे। 'टायफायड' की तीसरी पुनरावृत्ति का दौरा भी चला और वे अत्यन्त दुर्बल प्रायः कंकाल मात्र रह गये अन्त में, उन्होंने अपने को मृत्युंजय सिद्ध किया। सन् १९४५–४६ के बीच उन्होंने 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण-धूलि' नामक काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन किया। सन् १९४७ में वे प्रयाग आये और 'बच्चन' के साथ 'राहेजा' में रहने लगे। यहीं पर 'मधुज्वाल' लिखा गया। गांधी जी के बलिदान पर 'खादी के फूल' नामक काव्य-संग्रह पंत और बच्चन के नाम से निकला। सन् १९५२ में उनका पदार्पण 'आल इण्डिया रेडियो' (All India Radio) विभाग में परामर्शदाता (एडवाइजर) के रूप में हुआ। उनके आगमन से 'रेडियो' में नयी स्फूर्ति आ गयी। अभी तक वे इसी विभाग में काम कर रहे हैं और प्रयाग उनका चिर अभिलाषित निवासस्थान बन गया है। गत दस वर्ष के समय में उन्होंने 'उत्तरा', 'रजत-शिखर', 'शिल्पी', 'सवर्ण अतिमा', 'वाणी', कला और 'बूढ़ा चाँद' आदि काव्य ग्रन्थों की रचना की। अभी उनसे उत्तम ग्रन्थों की आशा है। कठिन कवि-कर्म का निर्वाह करते हुए यह उत्साही कवि, जीवन की रजु-वक्र-गतियों से होकर अपने महान् लक्ष्य साधन के निमित्त न जाने किन रहस्य मय सीढ़ियों को पार करते हुए, अज्ञात और अलक्षित रूप से निरन्तर आगे बढ़ता जा रहा है।

कला और सौन्दर्य-इन दोनों शब्दों का सुन्दर समन्वित रूप ही "पंत" शब्द है। विश्व के महान् कलाकार अत्यन्त सुन्दर थे। लिओनार्दो-दा विंची, गेटे, बायरन, शेली, कीटस, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और जयशंकर प्रसाद सुन्दर थे और वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति भी सुन्दर रहे होंगे। पंत से इन महान् कलाकारों की सौन्दर्य-

परम्परा की पुष्टि अनुपम ढंग से हुई। "पल्लविनी" के चित्र में पंत एक प्रतीति गन्धर्व-से दृष्टि-गोचर होते हैं। कवि के "कन्धों के चिकने काले व्याल" सदृश लहर बालों का वर्णन उन्हीं के शब्दों में देखिये—

"घने लहरे रेशम के बाल
धरा है सिर पर मैंने देवि !
तुम्हारा यह स्वर्गिक शृंगार
स्वर्ण का सुरभित भार।"

···पल्लविनी। पृ० ८०।

उनका रंग अधिक गोरा नहीं है पर उनके "क्लीन शेव्ड" चेहरे की रेखायें बड़ी आकर्षक होती हैं। उनके नेत्र बड़े ही भावपूर्ण, एक हल्की आभा से दीप्त तथा स्वप्निल, उनकी नासिका सुन्दर और नुकीली है। वे न तो स्थूलकाय हैं, न कृशकाय। उनकी ऊँचाई पाँच फुट, तीन इंच के आसपास होगी। उनके हाथों की उँगलियाँ कोमल और शरीर के अनुपात में लघु भी लगती हैं। इस प्रकार पंत सौम्यता, सुन्दरता और कोमलता की सामंजस्यमयी जीवित मूर्ति हैं। इस मूर्ति का दिव्य सौन्दर्य लियोनादो-दा-विंची या बायरन का-सा स्त्रियों को झकझोर कर उन्मत्त बनाने वाला सौन्दर्य न होकर शैली का-सा शान्त, सौम्य एवं दिव्य सौन्दर्य है।

पंत अपनी इस विलक्षणता के कारण देखने से ही कवि या कलाकार मालूम होते हैं। वे संकोची, मितभाषी और अन्तर्मुखी प्रकृति के व्यक्ति हैं। असाधारण प्रतिभा के साथ बच्चों की-सी सरलता, निष्कपटता तथा स्नेही स्वभाव उनकी अपनी विशेषताएँ हैं। बचपन की क्वारी उत्सुकता, कैशोर्य का सहज विस्मय, यौवन का अदम्य उत्साह एवं उल्लास और परिणत वय का ज्ञान-परिपक्व गाम्भीर्य-इन सभी गुणों का सुसामंजस्यपूर्ण रूप हम उनके स्वस्थ व्यक्तित्व में पाते हैं। वे दूसरों की प्रशंसा करते नहीं थकते। वे एक "पहुँचे हुए" व्यक्ति हैं, जिन्हें राग द्वेष और अभाव छूते तो हैं किन्तु उनमें वे बह नहीं जाते, जिनका विवेक, जिनकी भावनायें और संवेदन जीवन के कर्दम में कमल की भाँति निर्लिप्त रहकर विश्व को केवल सुरभि एवं सौन्दर्य का ही वरदान देते हैं। सहज शुचिता एवं शिवता उनके व्यक्तित्व में समाविष्ट हैं।

महाकवि मिल्टन (Milton) ने लिखा है कि कवि होने के लिए कवि का जीवन स्वयं एक काव्य होना चाहिये। पंत ने अपनी "ज्योत्स्ना" में कुमार से (पंत का व्यक्तित्व, कहलाता है "सच्चा कवि वह है, जो अपने सृजन प्रेम से

अन्तर निर्दोष बन सकता है। उनके कवि ने जीवन के सत्य और सौन्दर्य की प्रतिमा बना लिया है। कवि का सबसे बड़ा सत्य स्वयं कवि है¹ और इसका उदाहरण स्वयं पंत हैं। उनका जीवन एवं कविता दोनों अभिन्न हैं, एकाकार हैं। उनका व्यक्तित्व उनकी कविता का ही मूर्तरूप है, मधुरता, मृदुता एवं स्निग्धता का साकार रूप।

पंत के व्यक्तित्व के विषय में 'दिनकर' लिखते हैं—'कविता को कविता कहिये या नारी, बात तो एक ही होती है। यह नारीत्व पंत जी के मात्र काव्य में ही नहीं उनके व्यक्तित्व और स्वभाव में भी समाविष्ट है।² प्रेमचन्द का कथन है कि 'पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है।³ यह कथन पंत के प्रति चरितार्थ होता है। एक बार डा० सर्वपल्लि राधाकृष्णन ने पं० जवाहरलाल नेहरू के संबंध में कहा था कि यदि बालक, स्त्री, पुरुष—इन तीनों के गुण किसी एक व्यक्ति में पाये जाते हैं तो वह महान है और नेहरू जी इस के प्रमाण हैं। चाहे ये गुण नेहरू जी में हों या न हों, किन्तु पंत में ये तीनों गुण पूर्णतया वर्तमान हैं। बालक का-सा सारल्य, स्त्री की-सी सुन्दरता एवं कोमलता और पुरुष के सहज गाम्भीर्य का सुन्दर समन्वय उनके व्यक्तित्व में सदैव पाया जाता है। कवि का सहज आत्म-विश्वास भी पंत में पूर्णतया विद्यमान है।

उनका जीवन राग और विराग का अनन्त संघर्ष है। रागतत्व के प्राधान्य के कारण वे कवि बने और विराग तत्व के कारण लोकमंगलाभिलाषी संत। उनके रागी मन उन्हें जीवन की ओर (प्रवृत्ति की ओर) आकर्षित करता है तो विरागी मन उन्हें जीवन से दूर (निवृत्ति की ओर) ले जाना चाहता है। उनका समग्र जीवन प्रवृत्ति और निवृत्ति का सन्तुलन मात्र है।

इस प्रकार पंत अपने असंख्य मित्रों और पाठकों की श्रद्धा एवं भक्ति के पात्र बन चुके हैं। वे 'बच्चन' के 'देवता', डा० धीरेन्द्रवर्मा के 'सुमित्रा बाबू', कुँवर सुरेशसिंह के 'कालाकांकर का सौभाग्य' और अमृतलाल नागर के 'घर के देवता' हैं।

●

---

१ ज्योत्स्ना-सुमित्रानन्दन पंत। पृ० ६२, तृतीय संस्करण।

२ श्री सुमित्रानन्दन पंत स्मृति चित्र सहित सुमित्रानन्दन पंत, दिनकर पृ० १२७।

३. गोदान—प्रेमचन्द, पृ० १४६, वर्तमान संस्करण।

द्वितीय परिच्छेद

पंत की छायावादी रचनायें
और
उनके व्यक्तित्व का क्रमिक-विकास

प्रकट क्यों न कुछ कहते हो ? क्या
वे इतने हैं गुप्त, परम ?
यह कैसा परिहास, सुयम !"
—वीणा ।

यहाँ कवि की उज्ज्वलता, कोमलता, भावप्रवणता, अम्लान पवित्रता एवं छन्दों की संगीतात्मकता के साथ-साथ कवि को अपने भावी व्यक्तित्व-निर्माण में निरत होते भी देखा जा सकता है । कवि कविता-प्रेयसि से याचना करता है जिसे वह नयनों देखता है, उसे वह अपनी लेखनी से अंकन कर सके—

"आँखों से जो देखा, कर को
उसे खींचना सिखलाओ !"
—वीणा ।

'वीणा' में कवि अपनी लेखनी एवं दृष्टि का स्वावलम्बन चाहता है और उसकी अस्फुट आत्मा की मृदुल गुंजारें गूँज उठती है । कवि की काव्य-कल्पना में बाल-सुलभता है जो प्रयोगकालीन कृतियों में होना स्वाभाविक है । प्रकृति की सुन्दर सुकुमार गोद में उसे माता की वात्सल्यमय ममता दृष्टिगोचर होती है कवि कहता है—

"माँ, मेरे जीवन की हार
तेरा उज्ज्वल हृदय-हार हो अश्रु-कणों का यह उपहार।"
—वीणा ।

"वीणा" के कवि में आत्म-परिष्कार की भावना वर्तमान है । माँ से वह क्रन्दन करके मनोमालिन्य को स्नेहाश्रुओं से धोने के निमित्त अनुमति चाहता है । को सत्यं, सुन्दरं के साथ शिवं भी अभीष्ट है । अतः वह अपने जीवन को विश्व- और पर-सेवा-परायण बनाने की याचना करता है । कवि की जीवन-साधना एवं साधना इसी उज्ज्वल आदर्श मार्ग पर चल पड़ी है । कवि कहता है—

"विश्व-प्रेम का रुचिकर राग,
पर—सेवा करने की आग,
इसको सन्ध्या की लाली-सी
माँ ! न मन्द पड़ जाने दे,
द्वेष-द्रोह को शाम्य जलद-सा
इसको छा बढ़ाने दे !"
—वीणा

'वीणा' में बाल कवि के हृदयस्थ आदर्श भावनाओं एवं रागानुभूतियों की गीतात्मक अभिव्यक्ति मिली है। इस प्रकार कवि एक ओर सरस्वती से अपने काव्य के निर्जीवित शब्दों में जीवन लाने की प्रार्थना करता है तो दूसरी ओर कविता-प्रेयसि को वसन्त ऋतु में आने का निमन्त्रण देता है, एक ओर वह प्रकृति के अवाक् सौन्दर्य एवं उसके प्रति अपनी अनन्य स्नेहानुभूति की अभिव्यक्ति विह्वल होकर करता है तो दूसरी ओर वह अपनी मातृ-हीनता पर अश्रु-धारा बहाता है, एक ओर वह अपने गीतों के संगीत-माधुर्य में तल्लीन दिखाई देता है तो दूसरी ओर एक सजग आलोचक की भाँति अपने काव्य की व्याकरण-हीनता की ओर संकेत करता है–

> "यह अति अस्फुट व्यन्यात्मक है
> बिना व्याकरण, बिना विचार।"
>
> —वीणा।

'वीणा' की कविताओं पर महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्रीमती सरोजिनी नायडू की कृतियों का प्रभाव देखा जा सकता है।

"ग्रन्थि" पंत की दूसरी उत्कृष्ट रचना है जो सन् १९२० में लिखी गयी। उसके शीर्षक से ही स्पष्ट होता है कि वह कवि-जीवन के एक विशिष्ट घटना से सम्बन्धित है। "ग्रंथि" एक भावात्मक प्रणय-गल्प है। इसकी लघुकथा का प्रसार यों है—मधुमय वासन्ती—सन्ध्या में गन्ध-मुग्ध मधुपदल पवन में घूम रहे थे, आम्र-मंजरियों में कोयल कूक रही थी, अवनी की कोमल कामनायें सुमन बन खिल रही थी, कवि एक सरोवर में नौका खे रहा था। कुछ समय के उपरान्त चंचल लहरों के बीच सूर्य के साथ नाव भी डूब गयी। प्रकृति के साथ कवि-जीवन में भी अन्धकार छा गया। वह कुछ क्षण के लिये निश्चेष्ट पड़ा रहा। किन्तु पुनः सजग होते ही उसने देखा कि एक सुन्दरी युवती उसका शिर अपनी गोद में रखे हुए उसे एकटक निहार रही है। पल भर के लिये दोनों के नेत्र मिले और दोनों के हृदय प्रेम, ममता एवं मूक संवेदना से भर गये। बाला का मुख लज्जा से रक्तिम हो गया। संकोच के कारण वह कवि की विनय प्रणय-याचना का उत्तर न दे सकी। वह केवल कवि को "नाथ" शब्द से सम्बोधित कर चली गयी। बाला के गृह जाने के उपरान्त उसकी सखियों ने उसकी परिवर्तित मनोदशा को देखकर हास-परिहास किया। इस ओर कवि भी अत्यन्त विकल रहने लगा। मातृ-स्नेह वंचित जीवन में कवि उस मातृ-पितृ-हीना स्नेहमयी बाला को प्रेमवश आह्वान किया। किन्तु विधि को यह अभीष्ट न था। उसके नयनों के सम्मुख ही उस बाला का ग्रन्थि-बन्धन किसी अन्य व्यक्ति

के साथ सम्पन्न हुआ। कवि-जीवन के आशा-सुमनों पर तुषारापात हुआ। वह सलिलावर्त से बचकर जीवन के विषादावर्त में सदा के लिये लीन हो गया। अब कृति के काव्य-तत्त्व पर विचार करेंगे।

वासन्ती-सन्ध्या के मनोहर वातावरण में कविता का आरंभ होता है। बाला के इन्दु-वदन का सौन्दर्य उसके ललाट पर बिखरी हुई अलक की रम्यता और उसके नीरव नयनों के वार्तालाप से उत्पन्न लज्जा की लालिमा की सुषमा का अंकन सजीव है यथा—

> "लाज की मादक-सुरा-सी लालिमा
> फैल गालों में नवीन गुलाब से,
> छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
> अधखुले सस्मित-गढ़ों से, सीप से!"
>
> —ग्रंथि।

कवि उस स्नेहमयी की चितवन से अपनी दृष्टि के दीपित होने का चित्र प्रस्तुत करता है। कोमल शृंगार-भावना से परिप्लावित बाला के सूक्ष्म क्रिया-कलापों एवं हाव-भावों को कवि तदनुकूल सूक्ष्मता से अंकित करता है। उस बाला का अतिशय मधुरता से दबे स्वर में उसे "नाथ" कह कर लज्जा से सकुचा जाना मुग्ध बाला की प्रथम प्रेमानुभूति एवं प्रेमाभिव्यक्ति का कितना स्वाभाविक एवं चित्रमय वर्णन है! कवि के ही शब्दों में—

> "निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही,
> अवनि से, उर से मृगेक्षिणी ने उठा,
> एक पल, निज स्नेह-श्यामल दृष्टि से
> स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी।
> "नाथ"! कह अतिशय मधुरता से दबे
> सरस स्वर में, गुगुन्ति थी सकुचा गयी,"
>
> —"ग्रन्थि"।

इस प्रकार कवि और बाला के बीच प्रणय-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। वह अपने गृह लौट जाती है और ध्यानस्थ होकर वातायन से उद्यान की ओर देखने लगती है। यहाँ कवि उद्यान के मनोरम एवं सुमन द्रुमों की ओर हमारा ध्यान —[illegible] के बाद से निकली हुई जलधारा में एक मधुकर का भी आकृष्ट करता

कर द्रुमों के मूल में मग्न आशा के समान गिरकर अपने छंदों को पोंछकर फिर उड़ने के लिए विकल होना, मन्द पवन के कोमल भार से माधवी लता का झूमकर रस तिरछी पाँति मे लावण्य की ललित लोल उमंग-सी, पीन-यौवन भार-नमित मानिनी-सी झुक जाना अत्यन्त रमणीय एवं प्रभावोत्पादक है। उद्यान मे बाला के आने के बाद सखियाँ उससे हास-परिहास करने लगती हैं। एक सखी उसको "नव कमल वन मे "हँसिनी" कहती है तो दूसरी सखी उसके तारुण्य-प्राप्त मुग्ध, तिरछे, चपल नयनों की प्रेम-व्याकुलता का सुन्दर वर्णन करती है। यहाँ कवि की भावुकता देखते ही बनती है। सखी का कथन है कि बाला के नयन उसी प्रकार बाल सरलता से यौवन-तारुण्य को प्राप्त हुए हैं जिस प्रकार मीन के लघु बाल भय के आतंक से गहन जल मे छिपे रहते थे, तारुण्य को प्राप्त होते ही लहरों से क्रीडा करने की लालसा उनको विकल करने लगती है। उस बाला के प्रेम-स्निग्ध चंचल नयनों को कवि एक सुरम्य प्राकृतिक सांगरूपक के माध्यम से व्यक्त करती है कि कमल (नयन) पर दो सुन्दर खंजन (पलकें), जो पहले पंखों को फड़काना भी नहीं जानते थे (पलकें मारने की क्रिया से अबोध) अब (तरुण होने पर) चपल चोंचो से चोट कर कमल (नयन) में बन्द मधुप (पुतली) को विकल करने लगे अर्थात् बाला यौवन के आगमन के उपरान्त नयन-क्रीडा करना जानने लगी है—

> "कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
> पंख फड़काना नहीं थे जानते
> चपल चोंचो चोट कर अब पंख की
> वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को।"
>
> —ग्रन्थि।

इस प्रकार सखियों का बालिका के प्रति हास-परिहास करना अतीव मधुर है। कोई सखि कवि-हृदय रखती है और वह भावुकता के आवेश में कहती है कि वर्षा-काल के अंधेरी रात में उड़ते दीपों को (खद्योतों को) हथेली पर रख कर उनकी लघु ज्योति में नियति की रहस्यमयी रेखाओं को पढ़ चुकी है और वह प्रातःकाल के समय में दोल-सखी के साथ कई पग भी मिला चुकी है। एक सखी बाला को विरहिणी के रूप में कल्पना कर कहती है कि उसने अपनी व्यथा को एक दीर्घ श्वास में भरकर सहानुभूतिवश उसे हृदय से लगाकर सुलाया। वह पुनः कहती है कि नींद में खोले कम्पित अधरों पर प्रिय के अधरों के स्पर्श से वह चौंक पड़ स्मित-विस्मित सुन्दर स्वप्न बन गयी। यौवन के स्वप्न दर्शन से उसकी अनंगमय मानसिकता का ... अत्यन्त मधुर एवं स्वाभाविक है—

"स्वप्न के सस्मित अधर पर, नींद में,
एक बार किसी अपरिचित सांस का
अर्ध-चुम्बन छोड़ मैं भट चौंक कर
जग पड़ी हूँ अनिल—पीड़ित लहर-सी।"

—ग्रन्थि।

उस सखी के भावपूर्ण उद्गार को सुनकर एक प्रगल्भा सखी प्रेम का पाठ सामने रखती है—

"मन्द चलकर, रुक अचानक, अधखुले
चपल पलकों से हृदय प्राणेश का
गुदगुदाया हो नहीं जिसने कभी,
तरुणता का गर्व क्या उसने किया?"

—ग्रन्थि।

बाद में यह विनोद एवं उल्लास का स्वर मन्द पड़कर विषाद की लहरों में विलीन हो जाता है। कवि और उसकी प्रेमिका के प्रेम-सुमन को विधि ने निर्दयता से कुचल दिया और कवि के जीवन मे सदा के लिये निराशा एवं हाहाकार को स्थान मिला। कवि प्रेम-पंखों पर बैठ ज्योत्स्ना के स्वप्नलोक मे उड़ रहा था कि दुर्भाग्य के क्रूर आघातों ने उसके पंख काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया, प्रेम-पौधे को शैशव में ही प्रलय-वात ने उसको झकझोर डाला। जो प्रभात के स्वर्ण-किरणों का आलोक उसके जीवन-पट पर बिखर गया था वह सान्ध्य-धूमिलता मे विलीन हो गया।

"प्राप्त था जो हृदय जीवन का नया
था सुना पहिले सुनहले स्पर्श-से,
साँझ के मूर्छित प्रभा के पत्र पर
करुण-उपसंहार, हा, उसका मिला"

—ग्रन्थि।

प्रियतमा के वियोग में कवि का हृदय विदीर्ण हो उठा और उसमें तीव्र वेदना एवं करुणा-क्रन्दन परिव्याप्त है। प्रकृति का कण-कण उसे प्रेम रस में आप्लावित दिखाई पड़ता है, किन्तु वही एक प्रेम-वंचित एवं दुर्भाग्य है। अपने विरह-गान उद्गारों के प्रकाशन के समय कवि ने निर्वाण, सृष्टि, दर्शन, ज्ञान, ग्रंथि, गौ विरह, स्मृति, अश्रु, कल्पना, छाया, सुख आदि विषयों पर विचार किया है।

के विरह-वर्णन में करुण भावना विद्यमान है अवश्य, परन्तु कवि दुःख में न डूब कर उसका विवेचन करने लगता है, अतः "ग्रन्थि" का उत्तरार्द्ध पाठक के हृदय में रसात्मक अनुभूति एवं तीव्र सहानुभूति को जगाने की अधिक क्षमता नहीं रखता। कवि की उक्तियाँ यहाँ भी मार्मिक बन पड़ी हैं। प्रेम की अन्धता, उसकी मादकता एवं उसके भोलेपन का चित्र अत्यन्त रमणीय उतरा है—

> "पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञान हो
> हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं,
> बस बिना सोचे, हृदय को छीन कर
> सौंप देते हो अपरिचित हाथ में।"

—"ग्रन्थि"।

इस प्रकार "ग्रन्थि" एक वर्णन-प्रधान गीतिकाव्य है। प्राकृतिक सौन्दर्य एवं भावनाओं के वर्णन में कवि को अधिक सफलता मिली है। इसमें कवि का नवीन काव्य कौशल, अलंकरण का आधिक्य, सुन्दर छन्द-प्रवाह, उसके जीवन के हास अश्रु, उल्लास विषाद का चित्रण मिलते हैं। "ग्रन्थि" में कवि ने अतुकान्त कविता को अलंकृत किया है। १६ मात्राओं का आनन्द-वर्धन (पीयूषवर्ष का एक भेद) छन्द का सुन्दर निर्वाह आद्यन्त हुआ है—

> "बाल[३]-रजनी[४]-सी[२] अलक[३] थी[२] डोलती[५] = १९ मात्राएँ
> भ्रमित[३] हो[२] शशि[२] के[२] वदन[३] के[२] बीच[३] में[२] = १९ मात्राएँ

अन्त्यानुप्रास के अभाव में भी शब्दानुप्रासों से भाषा में संगीत आ गया है। पद-प्रवाह में भाराक्रान्त यौवन की मथर गति के साथ-साथ माधुर्य और ओज भी विद्यमान है। 'ग्रन्थि' कवि की प्रौढ़-कला का परिचायक है। वह कवि के वैयक्तिक प्रेम, वेदना एवं आन्तरिक कसक के हाहाकार की सफल अभिव्यक्ति है। इस प्रकार "ग्रन्थि" में प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति, कला-सौन्दर्य का उत्कृष्ट रूप, हृदयस्थ अनुभूतियों का अभिनव चित्रण, निराशा, दुःख एवं व्याकुल प्रणय-वेदना का जागरित रूप अंकित है। कहीं प्रेम की शीतल धारा बहती है तो कहीं उरस्तल से विरहाग्नि की चिनगारियाँ फूट पड़ती हैं, कहीं करुण-क्रन्दन है तो कहीं आँसू की बूँदें, कहीं आशाओं का स्वप्निल-जग है तो कहीं निराशा का अन्धकार। एक लघु कथा-सूत्र के माध्यम से कवि ने अपनी विशुद्ध भावुकता एवं अनन्य अनुभूतियों को उँडेल दिया है। "ग्रन्थि" चित्रमयी कल्पना से युक्त और परिष्कृत शृंगार-रसज्ञता से परिप्लावित है। इसके रचना-काल में कवि पर कालिदास एवं रीतिकालीन कवियों की कला का प्रभाव रहा, किन्तु कवि ने अपनी

सूक्ष्म एवं पैनी अन्तर्दृष्टि और गहरी मर्मज्ञता का परिचय देकर उसे नवीनता प्रदान की है। चिन्ता का विषय है कि कवि ने 'ग्रन्थि' के बाद किसी कथानक को लेकर काव्य-रचना नहीं की।

'पल्लव' कवि की तीसरी उत्कृष्ट रचना है। यह सन् १९२२-२६ के बीच विभिन्न विषयों पर कवि की लिखी हुई कविताओं का सुरम्य संग्रह है। 'पल्लव' के प्रवेश में कवि ने अपने काव्य के बहिरंग-पक्ष (शब्दशिल्प एवं कलापक्ष) पर विस्तृत विवेचन के साथ-साथ ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली की प्रति-द्वन्दिता का अन्त किया। इसके अन्तर्गत कवि ने हिन्दी के ब्रजभाषा-काव्य की उपलब्धियो और कमियों पर विचार किया है, साथ ही साथ हिन्दी-कविता की प्रकृति पर भी अमूल्य मन्तव्य प्रकट किये हैं। यहाँ (गद्य के क्षेत्र मे भी) केवल कवि के अदम्य प्रवाह, भाव तीव्रता एवं शब्द शिल्प का ही नही, अपितु एक जागरुक आलोचक की प्रखर विवेचना शक्ति, विस्तृत अध्ययन-शीलता एवं काव्य-मर्मज्ञता का भी परिचय मिलता है। इस तरह 'पल्लव' का 'प्रवेश' हिन्दी-कविता एवं भाषा की गतिविधि एवं आकृति-प्रकृति का सुन्दर विश्लेषण और विवेचन है। हिन्दी साहित्य मे इसका ऐतिहासिक मूल्य अक्षुण्ण रहेगा।

प्रवृत्ति की प्रधानता की दृष्टि से "पल्लव" की रचनाओ को छः भागो मे विभक्त कर सकते हैं :—

(१) प्रणय-भाव-प्रधान रचनायें—उच्छ्वास, आँसू, स्मृति आदि।

(२) कल्पना-प्रधान रचनायें—वीचिविलास, विश्व-वेणु, निर्झर-गान, निर्झरी, नक्षत्र।

(३) भाव-प्रधान रचनायें—मोह, विसर्जन, मुस्कान, मधुकरी आदि।

(४) चिंतन-प्रधान रचनायें—नारी, विश्वव्याप्ति, जीवन-यान, शिशु आदि।

(५) भाव एवं कल्पना-प्रधान रचनायें—बालापन, छाया, मौन-निमंत्रण बादल, स्वप्न।

(६) भाव, कल्पना एवं चिंतन-प्रधान रचना—परिवर्तन।

"ग्रन्थि" की तरह "उच्छ्वास" और "आँसू" में भी कवि की मूक विरह-वेदना छन्दों मे साकार हुई है। कवि की वैयक्तिक प्रेमानुभूति एवं विरह-व्यथा रुक-रुक कर प्रकट हुई हैं। कवि ने उच्छ्वास मे पर्वत-प्रदेश के प्राकृतिक-सौन्दर्य की पृष्ठभूमि मे एक बालिका के साथ प्रेम व्यवहार की चर्चा की है। यहाँ बालिका के भोलापन और सौन्दर्य की सम्मिलित छटा का वर्णन कवि प्रस्तुत किया है। कवि अपने सुमधुर गीतों से उसके मन को उकसाता था और उस सौन्दर्यमयी को प्रेम-

पाश में बाँधना चाहता था। कुछ दिनों के उपरान्त दोनों के बीच अकारण संदेह उत्पन्न हो गया और उसने (संदेह ने) उनकी प्रेम-प्रतिमा को चूर कर दिया। प्रेम की सफलता के लिए प्रेमियों के बीच विश्वास का होना परमावश्यक है। प्रेम में शंका का उदय होना तो प्रेम-वृक्ष का मूल ही विच्छेद होने के समान है। इसी तथ्य की ओर कवि ने "आंसू" में भी संकेत किया है।

"उच्छ्वास" में कवि प्रकृति के सुन्दरतम एवं सश्लिष्ट दृश्यों की ओर हमारी दृष्टि आकर्षित करता है और यहाँ कवि की तूलिका अधिक सशक्त हो गयी है।

"उच्छ्वास" की असफल प्रेम-कथा "आँसू" में अश्रुधारा बहाता है। विरह एवं निराशा की मार्मिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से "ग्रन्थि" से भी "आंसू" अधिक सफल रचना है। 'ग्रन्थि' में कवि बाहर से विकल और भीतर से गम्भीर है, किन्तु "आंसू" में कवि बाहर एवं भीतर भी विकल है। "आंसू" कवि के ही शब्दों में उनका "गीलागान" है और उसका "वर्ण वर्ण उर का कंपन है, शब्द शब्द सुधि का दर्शन है, चरण चरण आह मात्र है"। "ग्रन्थि" की भाँति यहाँ कवि दुःख में डूबकर न उस पर बौद्धिक विचार ही करता है, न मनोविकारों की सूक्ष्म विवेचना में ही लग जाता है। वह दुःखानुभूति के साथ हार्दिक तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। यहाँ कवि "ग्रन्थि" के नायक की तरह 'वेदना के मनोरम विपिन में' सब भाँति सुख सम्पन्न नहीं है, अपितु वह वेदना में डूबमान हो जाता है। "ग्रन्थि में आनन्दवर्धक छन्द की मंथर गति के साथ चलने वाली कवि की मुमर्मित विरह व्यथा का प्रवाह "उच्छ्वास" और 'आँसू' में आकर भिन्न गतियों में, विभिन्न छोटे-बड़े छन्दों में बाढ़ बनकर, रह-रहकर निकला है। इनकी मार्मिक अनुभूति के साथ यह कल्पना प्रसूत कवि बहुत कम कविताएं लिख सका है। 'आंसू' में प्रकृति उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त होकर प्रणयकाल की अनेक कोमल स्मृतियों को जगाती है। कवि को सम्पूर्ण विश्व एवं प्रकृति भी विरहजन्य दुःख से पीड़ित दिखाई देते हैं—

> "गगन में भी उर में है घाव,
> देखती ताराएँ भी राह
> बँधा विद्युत्-छवि में जलदाह
> चन्द्र की चितवन में भी चाह
> दिखाते जड़ भी तो अपनाव
> अनिल भी भरती ठंडी आह।"

—आँसू : प-६११

इस प्रकार कवि करीब विरहानुभूति को अधिक व्यापकता प्रदान करता है। "पल्लव" में "स्मृति" भी इन दोनों रचनाओं से सम्बद्ध और एक प्रेम-सम्बन्धी रचना है।

वीचि-विलास, विश्व-वेणु, निर्झरी, नक्षत्र आदि 'पल्लव' की कविताएँ मुख्यतः कल्पना-प्रधान हैं। कवि ने इनके माध्यम से अपनी सृजन-कल्पना को कलात्मक रूप दे दिया है। कवि के प्रतीक, रूपक एवं उपमायें वर्ण्य वस्तु को अधिक सजीव एवं हृदयंगम बनाने में सफल हुए हैं। निर्झर और निर्झर-गान जैसी कविताओं में कवि वह सवर्य की भाँति वर्ण्य वस्तु के ध्वनि,धर्म से उसके भाव-चित्रों को खड़ा कर दिया है। जैसे——

"यह कैसा जीवन का गान
अलि ! कोमल कल मल टल मल !
अरी शैलवाले नादान !
यह निश्चल कल मल छल छल !"

—निर्झरी: पल्लव।

कवि के कल्पना-प्रसूत कुछ रूपक अत्यन्त भव्य हैं जैसे, वीचि को 'सरिता के चंचल दृग कोर', 'अरी वारि की परी किशोर', 'ओ अकूल की उज्ज्वल हास' कहते से, नक्षत्र को 'स्तब्ध विश्व की अपलक विस्मय' 'ऐ निशि जाग्रत् वासुर निद्रित', 'आदि नग्न सौन्दर्य निरामय', 'नव प्रभात के अस्फुट अंकुर', 'ऐ अनन्त के हृत्कम्पन' कहने से वर्ण्य-वस्तुओं के विभिन्न स्वरूपों का भव्य आकलन होता है। यहाँ कवि का वर्ण्य-विषय के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेना द्रष्टव्य है।

'मोह', 'विसर्जन', 'मुस्कान', मधुकरी' आदि 'पल्लव' की रचनाएं मुख्यतः भाव-प्रधान है। इन सभी कवि रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और उनको सम्बोधित करके अपने भाव प्रकट करता है। वह एक ओर मधुकरी से मीठे गान सीखना चाहता है तो दूसरी ओर उसके साथ फूलों के कटोरों से मधुपान करने को व्याकुल है—

"सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे गान,
कुसुम के चुने कटोरों से
करा दो ना, कुछ-कुछ मधुपान।"

—मधुकरी: पल्लव

कवि को प्राकृतिक सुषमा के सम्मुख बाला का सौन्दर्य भी आकर्षणविहीन जान पड़ता है और वह बाला की रूप माधुरी को छोड़ प्रकृति की मृदु छाया की ओर आकर्षित हो जाता है—

> "छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
> छोड़ प्रकृति से भी माया
> बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन !
> भूल अभी से इस जग को !"
>
> —मोह-पल्लव ।

वास्तव मे 'मोह' आदि कवितायें 'वीणा-काल' मे ही लिखी गयी हैं, किन्तु भाषा, भाव एवं शैली की प्रांजलता की दृष्टि से 'पल्लव' मे संगृहीत है ।

'नारी', 'विश्व-व्याप्ति', 'जीवन-यान,' 'शिशु' आदि रचनायें मुख्यतः चिंतन-प्रधान हैं । कवि इन विषयों पर सोचता है और उनके रूपों को कुशलता से अंकित करता है । शिशु के सुकोमल व्यक्तित्व को कवि साकार कर देता है—

> "कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम !
> अये अभिनव, अभिराम !
> मृदुलता ही है बस आकार !
> मधुरिमा-छवि शृंगार,—(शिशु: पल्लव)

कवि नारी को 'अकेली सुन्दरता कल्याणि', 'सकल ऐश्वयों की संधान' कहकर उसके गुणों की प्रशंसा करता है । नारी को वह इन चार रूपों में देखना चाहता है– 'देवि ! माँ, सहचरि, प्राण' ।

'बालापन', 'छाया', 'मौन-निमंत्रण,' 'बादल' 'स्वप्न' आदि कविताओं मे कल्पना एवं भावना का सुन्दर सामंजस्य मिलता है । कवि की भावुकता से इन कविताओं मे अनिर्वचनीय सौन्दर्य आ गया है इन कविताओं की गणना केवल 'पल्लव' की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण पंत-काव्य की उत्कृष्टतम रचनाओं मे की जाती है । 'बालापन' मे कवि अपने 'यौवन के प्याले मे फिर वह बालापन भर' देने की याचना करता है और उसकी कल्पना-तन्त्री से विपुल भावनाओं की अस्फुट गुंजारें निकल पड़ती है । 'छाया' के प्रति उसकी अदम्य संवेदन शीलता जाग उठती है और कवि की कल्पना एवं भावना मिलकर एकाकार हो जाती है । वह 'छाया' के माध्यम से सुन्दरतम भावों को अभिव्यक्ति करता है । उसकी 'छाया' 'वातहता विच्छिन्न लता' के समान, 'रतिश्रान्ता व्रजवनिता' के समान और 'धूलि धूसरित मुक्त कुंतला' के समान दिखाई देती है ।

'छाया' का मानवीकरण करके उसमें कवि अनेक सुन्दर मानव-भावनाओं और क्रिया-कलापों का केवल आरोप ही नहीं करता है, अपितु पुराण-प्रसिद्ध द्रौपदी और दमयन्ती की करुण-कथाओं के साथ भिखारिणी का करुण-चित्र भी अंकित करता है। वियोगी कवि का दुखवादी दर्शन 'छाया' के करुणतर चित्रों को अवतरित करने में सहायक हुआ है। 'बादल' में कवि कल्पना के सहारे अनेक रंगीन चित्रों को उपस्थित करता है। वह बादल के विविध स्वरूपों एवं कार्य-व्यापारों की ओर सजग है। वह एक ओर बादलों का 'शुचि ज्योत्स्ना में इन्दु के सुकुमार कर पकड़ समुद्र पैरने का' सुकोमल कल्पना करता है तो दूसरी ओर उनके भयद 'विकट महा आकार' को दृष्टिगत करता है। 'मौन-निमन्त्रण' में कवि की रहस्यात्मक वृत्ति का प्रकाशन है। प्रकृति के विभिन्न सुरम्य वर्णनों के पीछे कवि कुछ रहस्यमय संकेतों को पाता है—ज्योत्स्नामयी निशा में नक्षत्रों से निमंत्रण देनेवाले को, पावस ऋतु के सघन घन प्रसूत तड़ित से इंगित करनेवाले को, मधुमास के सौरभ के माध्यम से संदेश भेजने वाले को, सुप्त सिन्धु—लहरों से बुलानेवाले को, तुमुलतम में खद्योतों के द्वारा पथ दिखलानेवाले सुख दुःख के सहचर को कवि जान नहीं पाता। 'स्वप्न' में कवि की कल्पना एवं भावुकता का इतना आधिक्य हो गया है कि वर्ण्य विषय की छवि अप्रस्तुतों के बाहुल्य से धूमिल पड़ गयी है। कवि की कल्पना 'स्वप्न' पर न टिककर 'जग की अविरत निद्रा का उपहास करनेवाले बालक के कंपित अधरों पर अतीत स्मृति के मृदुहास' पर टिकी है। इसमें भारतीय वेदान्त के कर्मफल एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तों का प्रभाव स्पष्ट है—

> "किन कर्मों की जीवित छाया
> उस निद्रित विस्मृति के संग।"
>
> —स्वप्न : पल्लव।

कवि "स्वप्न" पर सोच-विचारने लगता है और अतीत के सुखद दिन भी उसे स्वप्न तुल्य ही प्रतीत होते हैं। इसमें कवि की बालसुलभ भावुकता एवं रहस्यात्मक प्रवृत्ति उमड़ आयी है जिनसे कविता में एक विशेष प्रकार का आकर्षण आ गया है।

'परिवर्तन' 'पल्लव' की एक लम्बी रचना है। उसमें कवि की भावुकता, विराट कल्पना, चिंतनशीलता, संवेदनशीलता, विश्वव्यापी अनुभूति, पाण्डित्य-प्रखरता एवं कलामर्मज्ञता का एक साथ भव्य सामंजस्य हो जाता है। विश्व व्यापी परिवर्तन की चिरंतन क्रीड़ा को कवि नाना रूपों में देखता है। प्रकृत्या परिवर्तित विश्व एवं जीवन के हर एक पहलू पर कवि की दृष्टि टिकी है और उसने नश्वर जग की अनश्वरता का

साकार भी किया है। विराट कल्पनाओं, मानवीकरणों एवं वस्तुओं के माध्यम से कवि ने निराकार परिवर्तन को साकार बना दिया है, 'सहज मनोरमता' भरा है। इसी प्रसंग में उन्होंने मानव जीवन के सुख-दुःख, जन्म-मरण, इतिहास-संस्कृति आदि पर विचार किया है। स्वर्णिम आदर्शों के स्वप्निल जगत में विचरण करनेवाले कवि के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया और वह मानव जीवन की विकट वास्तविकताओं से परिचित होने लगा है। निष्ठुर परिवर्तन के कठोर धरातल पर उतरते ही कवि के स्वप्न भंग हो जाते हैं। वैयक्तिक जीवन का प्रेम-वैफल्य, परिवार का आर्थिक संकट आदि परिस्थितियों ने कवि को वैराग्य एवं दर्शन की ओर अग्रसर किया है और इसकी स्पष्ट प्रतिध्वनियाँ 'परिवर्तन' में मिलती हैं। पंत-काव्य के मर्मज्ञ आलोचक पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में 'परिवर्तन में कवि की विशेषता यह है कि उसने दर्शन-शास्त्र की शुष्कता में भी काव्य का रस-संचार कर दिया है, ज्ञान को भाव बना दिया है, काल को कला का स्पर्श दे दिया है। 'पल्लव' के अन्य चित्रपटों पर सधी हुई तूलिका ने ही 'परिवर्तन' में एक प्रशस्त चित्रपट पा लिया है। उसमें सभी छन्दों और सभी रसों का समावेश है। कथा का आधार लेकर लिखे गये, हिन्दी में प्रबन्ध काव्य अनेक हैं, किन्तु बिना किसी आधार के, केवल भाव और कला का इतना विशद काव्य खड़ीबोली में कोई नहीं।[1]' खड़ीबोली में ही क्या? विश्व साहित्य में इस कविता की तुलना में बहुत कम कवितायें रखी जा सकती हैं। इस प्रकार भाषा एवं भावगत प्रौढ़ता तथा प्राञ्जलता से परिपूर्ण यह कविता शब्द-चित्र, भाव चित्र, एवं मन्द-द्रुत गतियों से चलनेवाले छन्दों के नाद-सौन्दर्य का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है। परन्तु खेद का विषय है कि ऐसी लम्बी और समस्त भावों, रसों से पूर्ण कविता पंत जी ने कोई दूसरी नहीं लिखी।

सारांश में, 'पल्लव' पंत की सुन्दरतम रचनाओं का संग्रह है। उसमें कवि की कोमल प्रवृत्ति के साथ गम्भीर प्रवृत्ति का भी परिचय मिलता है, एक ओर 'छाया' है तो दूसरी ओर 'परिवर्तन'। इसमें कवि की भावमयी कल्पना, अतृप्त तृष्णा एवं व्यापक अनुभूति प्रौढ़ और सुसंयमित होकर प्रकट हुई है। कवि ने पार्थिव सौन्दर्य के बाह्य आवरण को हटाकर उसके भीतर छिपी हुई दिव्य-आत्मा के सौन्दर्य का दर्शन किया है। यहाँ कवि का प्रकृति-प्रेम पल्लवित हुआ है और विभिन्न प्राकृतिक वस्तुओं के साथ कवि का तादात्म्य दर्शनीय है। 'पल्लव' का कवि बाहर से अत्यन्त आनन्दोल्लास में निमग्न दिखाई देने पर भी, अन्तःकरण से दुःख एवं करुणा की

---

१. ज्योति-विहग : पं० शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १७४–१७५।

अनुसार दुःख मानव आत्मा का "अनुपम भोजन" है क्योंकि दुःख को उपालम्भ देता है उससे पलायन नहीं हो सकता है, और वह दुःख निर्मम आत्म-निरीक्षक की भाँति स्वीकार करता है--

"बन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना।"
—सिर सुख : गुंजन।

इस प्रकार कवि आत्म-साधना की ओर अग्रसर होता है। सामाजिक सूनापन में रहकर भी वह अपने आनन्दित अन्तर्जगत के सूनापन को स्वीकार नहीं करता, किन्तु वह सामाजिक सूनापन का अंत करके उसका निर्माण चाहता है। उसको मानव-जीवन अपूर्ण लगता है, अतः वह अनुभव करता है कि 'विश्व को नव और" चाहिए। इस तरह 'गुंजन' के कवि में हम दार्शनिक अस्पष्टता, विचारों का संघर्ष एवं असंतुलन पाते हैं।

'प्रतीक्षा', 'गृह-काज' 'मधु स्मिति', 'प्रेम-नीड' आदि लघु गीतों में कवि पंत की अनुरागमयी कोमल भावनायें निकल पड़ी हैं। वास्तविकता और अस्वस्थता ने इनके स्वभाव की प्रेम-स्निग्ध सरसता को सोख नहीं लिया। 'प्रतीक्षा' में कवि अपनी प्रेयसि (ऊहा प्रेयसि भी हो सकती है) के लिए व्याकुल है और निरन्तर उसकी प्रतीक्षा में तल्लीन रहता है। उषा और सन्ध्या प्रतिदिन आकर कवि के सूने गृह को झाँक कर चली जाती है, सरोवर की लहरें भी सिर उठाकर झाँकती हैं। सम्पूर्ण प्रकृति कवि के साथ प्रियतमा की प्रतीक्षा करती है। वह अपने प्राकृतिक सहचरों के द्वारा प्रिया से मिलने की आकांक्षा व्यक्त करता है। 'गृह-काज' में कवि अपने हृदय की प्रेम-भावना को उँड़ेल देता है वह अपनी प्रेमिका को उस दिन गृह-काज करने से मना करता है। उसका हृदय उसे अत्यन्त निकट पाना चाहता है। कवि का संबोधन अत्यन्त कोमलता से भरा हुआ है--

"आज रहने दो गृह-काज
प्राण! रहने दो गृह-काज।"
—गृह-काज : गुंजन।

प्रिया को कवि दूसरी पंक्ति में 'प्राण!' शब्द से सम्बोधित कर उसे हृदय के अत्यन्त निकट खींचना चाहता है। कवि का इंगित जब वह नहीं समझती तो कवि कहता है कि त्रिविध समीर उसके उर के स्तर-स्तर में सो-सो सुकुमार स्मृतियों को जगा रहा

है और उनके 'दृगों' में मधुर स्वप्न संसार' भर गया है। इतना कहने पर भी जब वह कवि की इच्छा नहीं समझ पाती है तो कवि प्रेम-भाव को उद्दीप्त करनेवाला एक प्राकृतिक प्रसंग उसके दृष्टि पथ मे लाता है और उस दृश्य का मादक प्रभाव अपने तन, मन, प्राणो पर दिखाता है—

> "शिथिल स्वप्निल पंखड़ियाँ खोल
> आज अपलक कलिकाएँ बाल
> गूँजता भूला भौंरा डोल
> सुमुखि उर के सुख मे वाचाल!"
>
> —गृह-काज : गुंजन।

"वाचाल" शब्द से प्रेम भ्रमर की मधु-लोलुपता, गुंज-वंचना एवं नटखटपन का स्फुरण होता है। कवि अंत मे कह उठता है—

> 'आज क्या प्रिये सुहाती लाज!'

इस रचना मे व्यंजना के कारण अधिक सरसता, कोमलता एवं मधुरता आ गयी है, जो अन्यत्र मिलना कठिन है। "मधुस्मिति" "मन-विहग" मे कवि प्रियतमा को सम्बोधित कर प्रकृति के उद्दीपनमय स्वरूप का वर्णन कर अपने उर पर उसका प्रभाव व्यक्त करता है। 'प्रेम-नीड' मे भी कवि प्रकृति के उद्दीपनकारी स्वरूप को अंकित कर कहता है कि उसके 'जीवन की डाल' 'प्रेम–विरह का वास' बन गयी है।

'गीत-खग', 'विहग के प्रति'-गुंजन की ये दोनो कवितायें सुन्दर प्रतीक हैं। *'गीत-खग' या 'विहग स्वयं कवि ही हैं और उसके द्वारा कवि अपने कवि-कर्म के* प्रति जग की प्रतिक्रिया पर प्रकाश डालता है। कवि खग से (अपने से) पूछ उठता है कि तुमने गुरु से न वेद पुराण सीखा है, न षड्दर्शन, और नीति विज्ञान। न तुम्हें भाषा का ज्ञान है, न 'काव्य, रस, छन्दो की पहिचान' है इसी कारण वह अपने को मनन एव अनुशीलन करने के हेतु सजग करता है—

> 'मनन कर, मनन, शकुनि नादान
> न पिक प्रतिभा का कर अभिमान।'

(किन्तु कवि के इस दृष्टिकोण के विषय मे मेरी यह आपत्ति है कि मनन एवं चिन्तन कवि को अधिक गम्भीर एवं बौद्धिक क्यो न बना दें, किन्तु वह कवि सुलभ काव्य-संवेदना एवं अनुभूति मे कोई योगदान नहीं दे सकता। इसी दृष्टिकोण को अपनाने से ही प्रायः उनके कवि को विचारक ने ग्रस लिया है और 'गुंजन' के पश्चात् उनके काव्य मे बौद्धिक पक्ष के प्राधान्य के कारण उसमें स्वभावतः नीरसता आ गयी) छायावाद के कटु आलोचकों पर कवि यों व्यंग्य करता है 'गीत-खग' 'तुम्

पर' 'हँसते हैं विहाग'। कवि को इसका कारण भी ज्ञात है, अतः वह कह उठता है 'गूढ़ रे छाया-वलित प्रकाश'। जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करने के निमित्त 'पल्लव' का व्योम-विहारी गीत-खग (कवि) 'गुंजन' में जीवन-तराश पर उतर आता है—

'छोड़ पंखों की शून्य उड़ान
वन्य खग ! विजन नीड़ के गान।'

—गीत-खग : गुंजन।

अब कवि अपने को, आलोचकों को दृष्टि से दृष्टि मिलाकर देखने लगा तो यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है कि सम्पूर्ण 'पल्लव' का काव्य-वैभव उसको केवल 'पंखों की शून्य उड़ान' (कल्पना के पंखों का फर् फर्) 'विजन नीड़ के गान' (अरण्य-रोदन) सा दिखाई पड़े। 'विहग के प्रति' में भी कवि ने अपने इसी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। 'पल्लव' का कवि अपने सुख-दुख में तल्लीन था, पर 'गुंजन' का कवि एवं विचारक जग-जीवन की ओर अग्रसर हुआ। 'पल्लव' के प्रकाशन से पन्त का यश हिन्दी-संसार में फैल गया। कवि इसकी ओर यों संकेत करता है—

'आज घर घर रे तेरे गान'

'पल्लव' के कवि में जो माधुर्य, रस संचार की अनुपम क्षमता और काव्य सौन्दर्य था, उसकी ओर भी गुंजन के कवि एवं विचारक की दृष्टि अवश्य थी किन्तु कवि जीवन का समाधान चाहता है, अतः उसको 'गुंजन' के संघर्षमय जीवन में उतरना पड़ा। 'पल्लव' का कवि 'गुंजन के विचारक की दृष्टि में इस प्रकार दिखाई देता है—

"मुक्त पंखों में उड़ दिनरात,
सहज स्पन्दित कर जग के प्राण,
शून्य नभ में भर दी अज्ञात
मधुर जीवन की मादक तान।"

—विहग के प्रति : गुंजन।

इसी कारण गुंजन का विचारक "पल्लव" के यशस्वी कवि को उद्बोधित करता है कि तुम "निर्जन का निभृत निवास" (एकान्त प्राकृतिक प्रांगण) को छोड़कर मानव-जग के नीड में बँध जाओ। ये दो कवितायें कवि के काव्य-विषयक मान्यताओं में परिवर्तन के सूचक होने के कारण विशिष्ट अध्ययन के अधिकारी हैं।

फिर भी पंत मूलतः कल्पना प्रवण कवि हैं और उनका विचारक स्वरूप उनकी इस प्रवृत्ति को दबा नहीं सका है; इसके साक्षी हैं "भावी पत्नी के प्रति", "अप्सरा"

और 'चाँदनी'। इन तीनों कविताओं में कवि की उर्वर कल्पना विभिन्न रसमय चित्रों के अंकन में समर्थ हुई है। कल्पनाशील एवं भाव-प्रवण युवक कवि की 'भावी-पत्नी' का रूप अत्यन्त मनोहर है। भावी पत्नी के विषय में अविवाहित युवक की कितनी रस भरी कल्पनायें हो सकती हैं, उन्हीं को कवि ने यहाँ साकार कर दिया है। भावी पत्नी के जन्मकाल से लेकर यौवनागम एवं प्रिय से प्रथम मिलन तक का सरस वर्णन कवि ने अंकित किया है। अपनी भावी प्रेयसि को कवि ने सुन्दरतम, पावनतम प्राकृतिक लिबास पहना दिया है। छन्द की मंथर गति ने भावी पत्नी के यौवन—भार को साकार कर दिया है और 'प्रिये! प्राणों की प्राण' की टेक के द्वारा कवि की भाव-प्रवणता के साथ-साथ भावीपत्नी से तादात्म्य प्राप्त करने की तीव्र भावना एवं प्रेम-विह्वलता प्रकट हुई है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि सम्पूर्ण कविता पंत के कलात्मक तारों से कसी गयी है। प्रत्येक पंक्ति तीन मात्राओं के शब्द या शब्दांशों के बीच कसी गयी। उदाहरणार्थ—

३ ४ २ ४ ३
"अरुण अधरों की पल्लव प्रात।—१६ मात्रायें

"अप्सरा' की कवि की विशद कल्पना बहुमुखी हो गयी है। अप्सरा की विश्व-दिगन्त व्यापिनी सूक्ष्म सुषमा को कवि ने अंकित किया है। इसमें रवि बाबू की 'उर्वशी' के सौन्दर्य की इंद्रिय ग्राह्य मादकता न हो कर भावना की सूक्ष्मता और चित्रों की विशदता है। 'अप्सरा' माता भी है, रूपसि भी है सहचरि भी है। वह रवीन्द्र की 'उर्वशी' की भाँति एक काल विशेष की न होकर 'चाल-नभचरी-सी वयहीन' है, अतः सर्वकालिक है। वह नवल रूप धारण कर प्रति युग में आती है, 'जग के सुख-दुख पाप-ताप तृष्णा-ज्वाला' उसे छू नहीं सकते और वह 'निज सुख में तल्लीन' है। जरामरण का उस पर कोई प्रभाव नहीं हैं, वह 'यौवनमयि नित्य नवीन' है। कभी वह स्वर्ग की अप्सरि थी, किन्तु वह 'अब वसुधा की बाल है। इस प्रकार कवि अपनी 'निखिल कल्पनामति' 'अप्सरि' की भुवि-दिवि-व्यापी शोभा को प्राकृतिक रमणीयता में साकार कर दिया है—

३ ३ २ ३ ३ २ =१६ मात्रायें
तुहिन-बिन्दु में इन्दु-रश्मि-सी
४ २ ५ =११ मात्रायें
सोई तुम चुपचाप

१ १ २ ३ ५ = १६ मात्रायें
मुकुल-शयन में स्वप्न देखती
२ ४ २ ३ = ११ मात्रायें
निज निष्काम छवि म्लान।'

कवि ने इसके हर पंक्ति के उत्तरार्ध के रूप में दोहे छन्द के उत्तरार्ध (१३ मात्राओं का) को ग्रहण करने से, पंक्ति का उत्तरार्ध एक निश्चित बाण की नोक के समान तीव्र गति से चल पड़ता है। हर पंक्ति का पूर्वार्ध मंथर गति से उत्तरार्ध द्रुतगति से चलना द्रष्टव्य है।

'गुंजन' में चाँदनी पर लिखी हुई दो रचनायें हैं। 'चाँदनी' में भी कवि की विराट कल्पना ने अनेक भव्य एवं सरस चित्रों को अवतरित किया है। चाँदनी कवि को कभी 'नीले नभ के शतदल पर' इन्दु-वदन अपने करतल पर रखी हुई 'नीरव अनिमि, 'शारद-हासिनी' के समान दिखाई देती है तो कभी 'नभ के विशाल करतल पर' एक वारि विन्दु के समान प्रतीत होती है। दूसरी कविता में कवि को वह 'जग के दुस्तर्न्य शयन पर' लेटी हुई कृश, दुर्बल, रुग्ण बाला के समान दिखाई पड़ती है और उसके साँसों में शून्य समा गया है। चाँदनी पर लिखी गयी ये दोनों कवितायें कवि की विभिन्न मनस्थितियों की द्योतक हैं; पहली कविता आह्लाद की और दूसरी विषाद की। इस तरह 'भावी पत्नी के प्रति' 'अप्सरा' एवं 'चाँदनी' पंत काव्य की सुन्दरतम रचनाओं में से हैं।

''एक तारा' 'नौका विहार' 'मधुवन' 'गुंजन' आदि 'गुंजन' की कवितायें मुख्यतः वर्णन-प्रधान हैं। इनमें प्रथम दो रचनाओं की हर एक पंक्ति में प्रकृति के सुन्दरतम संश्लिष्ट चित्र बिखर पड़े हैं। संगीत, शब्द-चित्र और तूलिका में इतना निकट सम्बन्ध स्थापित करना हिन्दी के अन्य कवियों की प्रतिभा के बाहर है। हर एक पंक्ति में कवि ने अपूर्व सौन्दर्य भर दिया है। 'चित्र में झंकार में चित्र' मिलकर एकाकार हो गये हैं। चित्रों में जीवन का नीरव संगीत है। तन्वंगी गंगा के नारी-रूप के अंकन के पश्चात् उसे आलिंगन करने के हेतु पुलिन रूपी बाहों का बढ़ना कितना सरस मानव-व्यापार है!

'दो बाहों से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर
आलिंगन करने को अधीर।'

—नौका विहार-गुंजन।

'एकतारा' में कवि ग्रामांचल की सन्ध्या का नीरव वातावरण अंकित करता है। इन दोनों कविताओं में कवि ने एक ही शिल्प-विधान का प्रयोग किया है, जो सभी दृष्टिकोणों से अत्यन्त प्रौढ़ माना जाता है। हर एक चित्र को कवि ने सोलह मात्राओं

के तीन तुकान्त युक्त पंक्तियों में अंकित किया है। स्पष्टता के लिए एक चित्र उपस्थित किया जायगा—

४   २   २   २   ४   २   —१६ मात्रायें
"निश्चल जल के शुचि दर्पण पर
४   २   ३   ३   ४   —१६ मात्रायें
बिम्बित हो रजत-पुलिन निर्भर
४   ४   ४   ४   —१६ मात्रायें
दुहरे ऊँचे लगते क्षणभर।'

—नौका-विहार: गुंजन।

ये दोनों कवितायें खड़ीबोली की सुन्दरतम रचनाओं में से हैं। 'मधुवन' में तीन गीत हैं। प्रथम गीत में छायावाद के मुक्तक का भावात्मक संगीत है तो अन्य दो गीत वर्णन-बहुल हैं, इनमें रस की अपेक्षा सौन्दर्य-चयन अधिक है। इनमें प्रकृति मानवीय सुषमा से सुसज्जित है। 'मधुवन' का उन्मुक्त मलय-पवन मानव और प्रकृति की सीमाओं से स्वतन्त्र होकर दोनों के लिए रसात्मक प्रेरणा भी बन गयी है—

'डोलने लगी मधुर मधुवात
हिला तृण, व्रतति, कुंज, तरु-पात,
डोलने लगी प्रिये! मृदु वात
गुंज-मधु-गन्ध-धूलि-हिम गात।'

—मधुवन: गुंजन।

'गुंज-मधु-गन्ध-धूलि-हिम गात' में वासन्ती समीर की गति, स्फूर्ति के साथ देह-स्पर्श भी है। 'गुंजन' के चिन्तन-प्रधान लघु गीतों में भी चित्र की मनोहारिकता और संगीत की तरलता है।

संक्षेप में, 'गुंजन' सभी दृष्टियों से पंत जी की प्रतिनिधि रचना है। उसमें उस समय कवि के मानस में राग और विराग, आकर्षण और विकर्षण, काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं, कवि और दार्शनिक के बीच जो द्वन्द्व एवं संघर्ष चल रहा था, उसी की स्पष्ट-अस्पष्ट काव्यात्मक अभिव्यक्ति हो चुकी है। 'गुंजन' वह सम्पर्क-बिन्दु है, जहाँ उनके भाव-प्रवण कवि एवं गम्भीर दार्शनिक, उनकी भावात्मक सरसता एवं नीरसता, प्रकृति और मानव, सुन्दरम् तथा शिवम्, अनुराग और विराग, भाव विह्वलता एवं संयम एक दूसरे से मिल जाते हैं। पंत का काव्य-वैभव 'पल्लव' में दिखाई पड़ता है,

किन्तु वह 'गुंजन' की तरह उनकी प्रतिनिधि रचना नहीं हो सकती। 'गुंजन' में काव्य के साथ दर्शन ने भी स्थान पा लिया है। छायावाद की मान्यताओं पर 'पल्लव' के कवि में जो अटल विश्वास था 'गुंजन' के काल तक आते-आते वह ध्वस्त होता जा रहा था। 'पल्लव' का कवि प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत हुआ था, किन्तु 'गुंजन' में कवि ने मानव और प्रकृति को समान स्थान दिया। इस प्रकार पल्लव का सुकुमार कवि गुंजन के रचनाकाल में प्रकृति से मनुष्य की ओर, सुन्दरम् से शिवम् की ओर भावुकता से संयम की ओर अग्रसर होता है। 'गुंजन' में काव्य से भी बढ़कर स्वयं कवि ही हमारे अध्ययन का विषय बन जाता है।

'ज्योत्स्ना' नाटक के रूप में लिखे जाने पर भी अनेक सुमधुर गीतों के कारण काव्य-संग्रह ही माना जा सकता है। इसमें पंत जी के सुन्दरतम गीत मिलते हैं जो भाव-नाट्य और मूक नृत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। 'ज्योत्स्ना' तक आते आते पंत की काव्यधारा प्राकृतिक वाटिका से हटकर जीवन के संघर्षमय प्रांगण में प्रवाहित होने लगी। उनकी दृष्टि मानव-जीवन के चिरन्तन सत्यों की ओर आकृष्ट हुई जिसका परिणाम है ज्योत्स्ना। 'ज्योत्स्ना' में अमूर्त भावनाओं को मूर्त पात्रों के व्यक्तित्व में समाविष्ट किया गया है। सभी पात्र केवल प्रतीक मात्र हैं। इसका कथानक अत्यन्त लघु प्रसार का है। इसमें कवि विश्व को प्रेम का नवीन स्वर्ग बनाने की अपनी सैद्धान्तिक कल्पना को भाव-पात्रों के द्वारा पूर्ण करता है। संघर्षशील विश्व को देखकर इन्दु अपनी प्रियतमा ज्योत्स्ना को भूलोक का साम्राज्य सौंप देता है। वह पवन, सुरभि, स्वप्न और कल्पना की सहायता से प्रेम के नवीन स्वर्ग का निर्माण करती है। नाटक पांच अंकों में विभक्त है। प्रथम और पंचम अंक में कवि के सांस्कृतिक समाज का हार्दिक चित्र है, तृतीय अंक में बौद्धिक चित्र। चतुर्थ अंक में 'ज्योत्स्ना' का ज्योतिर्लोक संक्रमण-काल की विभीषिका से ग्रस्त हो जाता है। चन्द्र-ग्रहण से लाक्षणिक संकेत से कवि ने मानव मन के सतोगुण पर तमोगुणके आक्रमण का स्पष्ट आभास दिया है। तृतीय अंक में सुलेमान कहता है 'संसार की भिन्न-भिन्न सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के स्वर्गवासी देवी-देवता एवं नरकवासी राक्षस-गण, जो हमारे आधुनिक युग की किशोरावस्था में मनुष्यों पर आतंक जमाते रहे हैं, केवल मनुष्य के मनोजगत् में व्याप्त सद् एवं असद् प्रवृत्तियों के कल्पित स्वरूप एवं चित्र-मात्र है"[1]।

---

१. "ज्योत्स्ना" : श्री सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ७१, द्वितीय संस्करण

'ज्योत्स्ना' में कवि नवयुग का स्वप्न नाटक के रूप में दिखा देता है। इसमें उसने अपने मानवतावाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। 'व्यक्ति-समुदाय-राग-द्वेष रत' में स्थित मानवता का विश्वबन्धुत्व के रूप में विकसित कर प्रवृत्तियों के परिष्कार स्वर्ग के रूप में संपूर्ण विश्व को बदल देना ही 'ज्योत्स्ना' के द्वारा कवि का ध्येय है। दया, प्रेम, भक्ति, श्रद्धा और अनुराग आदि उदात्त विभूतियों से आदर्श प्रेम स्वर्ग का निर्माण होता है। इसने विश्व के भौतिक भेद-उपभेदों को मिटा कर उसे आध्यात्मिक समन्वय से एक करने के व्यापक मानवीय एकता का प्रतिपादन है। 'ज्योत्स्ना' के वक्तव्य से कवि यही कहता है—'जिस प्रकार पूर्व की प्राचीन सभ्यता अपने एकांगी आध्यात्मिक तत्त्वालोचन के दुष्परिणाम-स्वरूप मायात्मक मुक्ति के फेर में फँसकर, नाम-रूप पर स्थित जन-समाज की ऐहिक उन्नति के लिए बाधक हुई, एवं जीवन के प्रति मनुष्य के हृदय में विरक्ति पैदा कर गई, उसी प्रकार अभी पश्चिमी सभ्यता एकांगी जड़वाद के दुष्परिणाम-स्वरूप, विकासवाद, प्रकृतिवाद एवं जड़विज्ञान के फेर में पड़कर, नाम-रूप के संसार के प्रति अतिशय आसक्ति पैदा कर, अर्थ लोलुपता, इन्द्रिय-प्रियता, पशु-बल एवं विनाश के दल-दल में डूब गई। पाश्चात्य जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व के आध्यात्म-प्रकाश की आत्मा भर एवं आध्यात्मवाद के अस्थिपंजर में भूत या जड़विज्ञान के रूप-रंग भर हमने नवीन युग की सर्वांग परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण किया।'[1]

'ज्योत्स्ना' में मुख्यतः चिंतन एवं कल्पना का प्राधान्य है। वह छायावाद के प्राकृतिक दर्शन का मानसिक रूपक है। उसके पात्र के नाम नैसर्गिक होते हुए भी मानुषिक हैं, परन्तु इन सब में एक ही निर्मल एवं उज्ज्वल आत्मा का प्रकाश है, एक ही जीवन-शक्ति का विकास है, जो स्वयं पंत जी के जाग्रत कवि-आत्मा का प्रतिरूप है। इसी की ओर संकेत करते हुए "विज्ञापिका" में "निराला" जी ने लिखा है—'ज्योत्स्ना में उनका (पंत जी का) पहला प्रिय, भावमय, श्वेतवाणी का कोमल कवि-रूप ही दृष्टिगोचर होता है'। इस प्रकार 'राग और विराग, काव्य और दर्शन, भावना और बुद्धि, भौतिकता और आध्यात्मिकता एक दूसरे के गले में बाहें डाले हुए मानव-स्वप्नों के जिस ऊँचे शिखर तक पहुँच सकती थी, 'ज्योत्स्ना' ने उसे छू लिया है। इस संतुलन को प्राप्त करने के लिए पंत जी को जो संघर्ष करना पड़ा था, 'गुंजन' उसी का साथी है'[2]।

१. ज्योत्स्ना: श्री सुमित्रानन्दन पंत: पृ० ६६-७०, द्वितीय संस्करण।
२. पल्लविनी : का एक दृष्टिकोण—हरिवंश राय 'बच्चन' पृ० ३१, तृतीय संस्करण।

दृश्य-काव्य की दृष्टि से 'ज्योत्स्ना' एक असफल नाटक है। एक सफल नाटककार की निर्वैयक्तिकता, निर्लिप्तता भावुक कलाकार पंत में नहीं दिखाई देती। इस नाटक के पात्रों में सहज जीवन का स्पन्दन होते हुए भी वे सभी कवि के कलात्मक संकेतों पर नाचते प्रतीत होते हैं। इसमें अधिकतर श्रव्य-काव्य के तत्वों का समावेश हुआ है। नाटिका में कथानक और चरित्रों का समुचित विकास नहीं हुआ। उसकी कथा वस्तु एक सिद्धांत निरूपण के लिए साधन मात्र है। अतः इसमें कथा के उन तत्वों का अभाव है, जो नाटकीय विस्तार के लिए आवश्यक हैं और पात्रों की मांसलता एवं विकास शीलता का अभाव है। इसमें नाटककार की निर्वैयक्तिकता और नाटकीय प्रतिभा की अपेक्षा कवि की भावुकता एवं वैयक्तिक विचारधारा की प्रमुखता है। इसे एक भाव-नाटक कहा जा सकता है और आवश्यकतानुसार दृश्यों को संक्षिप्त करके रंग-मंच पर खेला जा सकता है।

''ज्योत्स्ना' में यथा स्थान सुन्दर गीत विद्यमान हैं और विभिन्न पात्रों के शब्द-चित्र, भाव-चित्र इन गीतों में साकार हो गये हैं। पवन 'सर-सर मर-मर भन-भन सन-सन' की ध्वनि करते हुए अपने सूक्ष्म अस्तित्व का परिचय देता है तो तारिकायें यों गाती हैं :—

'कुन्द-धवल, तुहिन-तरल
तारा-दल, ए—
तारक चल हिम-जल-पल
नील गगन विकसित दल
नीलोत्पल, ए—'

……ज्योत्स्ना : पृ० १७-१८

ओस बालाओं का गान उनकी कोमलता एवं तरलता के अनुकूल है—

''छल छल, टल टल,
जीवन के पल,
सजल सजल रे, मूक अश्रु-दल !
मधुर मिलन के मोती चंचल
विधुर-विरह से पिघल पिघल गल,
ढल ढल, टल टल,
अश्रु-हार रे बन जावे स्मृति में गुँथ अविरल !''

……ज्योत्स्ना : पृ० २१

किन्तु इन गीतों को इनके वातावरण और प्रसंग से अलग कर देखा जाय तो इनका आधा सौन्दर्य नष्ट हो जायगा। इस प्रकार वाल्मीकि एवं तुलसी के राम-राज्य, प्लेटो की "रिपब्लिक", अंग्रेजी समाजवादियों की "यूटोपिया" कार्लमार्क्स के साम्यवादी समाज की आदर्श कल्पना की भांति पंत जी की "ज्योत्स्ना" भी एक आदर्श मानव-संस्कृति एवं समाज की काव्यात्मक कल्पना है।

"युगान्त" कवि की सन् १९३४—३५ के बीच लिखी हुई कविताओं का संग्रह है। यह पंत के छायावाद-युग की अन्तिम एवं प्रगति-वाद युग की प्रारम्भिक रचना है। इसकी सभी कविताओं में संवेदन शीलता की अपेक्षा चिंतन की प्रधानता है। समस्त कवितायें एक ऐसी अजस्र भावधारा से सूत्रबद्ध हैं, जो मानव-जगत की कल्याण-कांक्षा से परिप्लावित है। "ग्रन्थि" एवं "पल्लव की करुण-भावना "युगान्त" तक आते आते मंगल की भावना मे परिणत हो गयी है। इसमें कवि के आदर्श ने 'सुन्दरम्' तक सीमित न रहकर "सत्यम्' और "शिवम्" के छोर छू लिया है। कवि ऐसी मान्यताओं को हमारे सम्मुख उपस्थित करता है जिनके द्वारा मानव-जीवन में पूर्णता स्थापित हो सके—

"मैं झरता जीवन-डाली से, सहूलाद शिशिर का शीर्ण-पात,
फिर से जगती के कानन में, आ जाता नव मधु का प्रभात।"

······युगान्त।

"युगान्त" का कवि सामंत-युग और पूंजीवादी युग का (शायद छाया-वादी युग का भी) अंत देखना चाहता है" प्राचीन संस्कृति के प्रेमी—"पल्लव" के कवि ने "परिवर्तन" में यों कहा था—

"कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल!"
"अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,
कहाँ वह सत्य वेद विख्यात!
दुरित, दुःख, दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा मरण भ्रू-पात!"

······परिवर्तन : पल्लव।

वही कवि "युगान्त" में उसी प्राचीनता की सामाजिक व्यवस्था एवं रूढ़ियों के प्रति तीव्र आक्रोश प्रकट करता है—

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र! हे स्रस्त-ध्वस्त! हे शुष्क शीर्ण!
हिम-ताप-पीत, मधुवात भीत, तुम वीतराग, जड़, पुराचीन!"

······युगान्त।

मध्य-युग की जरठ ध्वस्त, रूढ़ि-जीर्ण अंध-रूढ़ियों एवं संकीर्णताओं से कवि युग को उन्मुक्त कर, उसकी शिराओं में नूतन सौन्दर्य, नवल वसन्त और नवीन विचारों को प्रवाहित करना चाहता है। अतः कवि गीत-खग कोकिल को नूतन सृजन-संदेश सुनाने के लिये उद्बोधित करता है—

"गा कोकिल! बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बन्धन।"

......युगान्त।

मानवता के विकास में बाधक मध्य-युग, पूंजीवादी एवं साम्राज्यवादी युग के भ्रम-जाल तथा सांस्कृतिक आदर्शों पर कवि निर्मम प्रहार करता है—

"शत मिथ्यावाद विवाद तर्क, शत रूढ़ि नीति शत धर्म द्वार।
शिक्षा, संस्कृति, संस्था, समाज, यह पशु-मानव का अहंकार॥"

—युगान्त।

'युगान्त' के कवि ने मद-गर्वित भौतिकवाद की प्रतिक्रिया के रूप में प्रकाशमान मानवतावाद की प्रतिष्ठा कर, उसे आध्यात्म का स्थायी सम्बल प्रदान किया है। विगत युग में भी जो कुछ चिरन्तन और मंगलकारी तत्व हैं कवि ने 'बापू' शीर्षक कविता में उनका भव्य स्वागत किया है—

'सदियों का दैन्य-तमिस्र तूम,
धुन तुम ने कात प्रकाश-सूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढँक दी
बुन नव संस्कृत मनुजत्व पूत।'

—बापू, युगान्त

कला की दृष्टि से भी 'युगान्त' का अपना महत्त्व है। उसमें 'पल्लव' की विशद कलाकारिता न होते हुए भी भावना वैसी ही कोमल कान्त है। इस में 'हिम परिमल की रेशमी वायु' बह रही है, 'अलि के अन्तर में प्रणय-गान है। यहाँ प्राकृतिक आँगन में भी चिड़ियाँ चहक रहीं हैं। युगांत की अधिकांश कविताओं की भाषा-शैली गद्यात्मक हो गयी है; किन्तु कहीं कहीं कवि की शब्द-सजीवता यहाँ भी परिलक्षित होती है—

'वे डूब गये-सब डूब गये
दुर्दम, उदग्रशिर अद्रि शिखर !
स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप में
लो, स्वर्ण-स्वर्ण अब सब भूधर।'

—युगान्त।

यहाँ 'अद्रि-शिखर' जड़ प्रतिक्रियाओं के प्रतीक हैं।

'युगान्त' की 'मंजरित आम्रवन छाया' शीर्षक कविता अत्यंत सरस है। पंत जी का मर्यादित हृदय यहाँ अधिक अधीर और बन्धनमुक्त हो गया है। कवि अपनी प्रिया के साथ प्रणय व्यापार का खुलकर वर्णन करता है। कवि की प्रेयसि लावण्य को प्राप्त हुई थी और दोनों मंजरित आम्रवन छाया में प्रथम बार मिले थे। प्रेमिका का वर्णन कवि की चित्रात्मक शैली में दर्शनीय है—

'तुम मुग्धा थी अति भाव प्रवण
उकसे थे अंबियों-से उरोज
चंचल, प्रगल्भ, हँसमुख, उदार।'

—प्रथम मिलन: युगान्त।

आम की डालो पर बैठकर कोकिल कूक रही थी, मुकुल हिल रहे थे और प्रिय एवं प्रेमिका के प्राण गन्ध से मुग्ध हो गये। कवि उस अवसर के मिलन शृंगार का सजीव एवं मादक चित्र उपस्थित करता है—

"तुम ने अधरों पर धरे अधर;
मैंने कोमल वपु भरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल मधुर,
मिल गये सहज मारुतामोद!"

—प्रथम मिलन: युगान्त।

प्राय रस का केवल संकेत मात्र करके चलने वाले मर्यादित कवि पंत के सम्पूर्ण काव्य में यही एक ऐसा स्थान है जहां कवि आलिंगन, चुम्बन एवं आत्म-समर्पण तक चला गया है।

"युगान्त" की 'ताज' शीर्षक कविता से हमें कवि के परिवर्तित दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय मिलता है। यहां पंत जी ने (जो मुख्यतः कलाकार हैं) कला की अपेक्षा जीवन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। अतः "ताज" में वे कहते हैं—

"मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति !
आत्मा का अपमान, प्रेत औ' छाया से रति !
शव को दें हम रूप-रंग आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का !"

—ताज : युगान्त।

"पल्लव" के जिस कवि ने "छाया" को अपनी उर्वर कल्पना के बल पर सजीव कर दिया था, वही कवि विश्व के महान् कला-खण्ड "ताज" का प्रत्यक्ष आधार एवं आकार पाकर भी उसका कोई कलात्मक रूप अंकित न कर सका। इससे विदित होता है कि "पल्लव" का सौन्दर्य-प्रेमी कवि "युगान्त" में बहुत दूर तक चला गया है।

"युगान्त" में मधुस्मृति, तितली, छाया, शुक्र, बाँसों का झुरमुट सन्ध्या आदि प्राकृतिक सौन्दर्य की आकर्षक रचनायें कवि के प्रकृति प्रेम की परिचायक हैं।

"इस प्रकार "वीणा" से "युगान्त" तक कवि का विकास प्रकृति से मानव की ओर, कल्पना से चिंतन की ओर, नारी-कला से पौरुषकला की ओर है। परन्तु उसमें सौन्दर्य-भावनाओं की प्रधानता है और अन्त में उसका दृष्टिकोण भूत और आत्मा के समन्वय की ओर उन्मुख होता है, जिस पर गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव है, जिसमें भूत में चेतना और शरीर में आत्मा, समाज में व्यक्ति की ओर आकर्षण है और नवयुग के निर्माण की मांगलिक भावना के आधार ये ही केन्द्र हैं[1]।"

तृतीय परिच्छेद

स्वच्छन्दतावाद और छायावाद

स्वच्छन्दतावाद अथवा रोमैन्टिसिज्म (Romanticism) सामान्यतः एक प्रवृत्ति विशेष का द्योतक शब्द है। यह प्रवृत्ति सभी साहित्यों में किसी न किसी काल में परिलक्षित होती है। प्राचीन शिष्ट तथा क्लैसिक (Classic) परिपाटी के विरोध में जो विचारधारा उठ खड़ी हुई, उसी को स्वच्छन्दतावाद कहा गया है। दूसरे शब्दों में साहित्यिक उदारवाद ही स्वच्छन्दतावाद है। एक सामान्य प्रवृत्ति का नाम होने पर भी स्वच्छन्दतावाद शब्द का विशिष्ट प्रयोग १६ वीं शती के अंग्रेजी काव्य के लिये होता है, जिसके प्रमुख कवि वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, बायरन तथा कोलरिज हैं।

स्वच्छन्दतावाद के उद्भव की दृष्टि से १७८९ ई० की फ्रान्स की राज्यक्रान्ति की तिथि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। रूसो स्वच्छन्द धारा का प्रथम प्रतिनिधि था। स्वातन्त्र्य की लालसा एवं बन्धनों का त्याग उसका मुख्य आग्रह था। प्राचीन धर्म, परंपरागत सामाजिक संस्कार आदि समाप्त हुए और स्वच्छन्दतावाद का जन्म हुआ। साहित्य को सीमा, नियम, आदर्श उद्देश्य आदि से मुक्तकर व्यापक बनाया गया। जीवन की भाँति, साहित्य गतिशील भी है तथा युग एवं परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तनशील भी है। इस तथ्य का बोध होते ही साहित्यकारों ने परंपरा के विरुद्ध विद्रोह किया तथा अनुकरण के स्थान पर आन्तरिक प्रेरणा को, बाह्य आकार के स्थान पर सूक्ष्म भावाभिव्यंजना को महत्त्व दिया। फिलिप सिडनी की 'एन एपालोजी फार पोयट्री', शेली की 'डिफेन्स आफ पोयट्री', तथा कोलरिज की 'बायाग्राफिका लिटरेरिया' आदि पुस्तकें इस विद्रोहात्मक प्रवृत्ति की परिचायिका हैं। आगे चलकर क्रोचे, ने साहित्य के इसी गत्यात्मक स्वरूप का

भावुकतामय जीवन
निर्दिष्ट हुआ हो
सशक्त बनाती एवं

निर्देश करती है।[1] संक्षेप में आत्मानुभूति का अभिव्यक्ति, बहुरंगी कल्पना की अतिशयता, सौन्दर्य के प्रति अत्यधिक आकर्षण, विस्मय की भावना, प्रकृति-प्रेम, सर्वचेतनवाद (Pantheism) या एक ही सूक्ष्म चेतना का समस्त विश्व में दर्शन, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक बन्धनों एवं रूढ़ियों से विद्रोह, उन्मुक्त प्रेम की प्रवृत्ति (लौकिक या आध्यात्मिक), मानव-सी मतृत्व की भावना, गीति-शैली एवं संगीत की ओर झुकाव इत्यादि स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ किसी एक कवि में उपलब्ध नहीं होती, किन्तु कवियों में कुछ प्रवृत्तियाँ विशेष प्राधान्य रखती हैं। उदाहरणार्थ इन कवियों में बायरन और शेली के विद्रोह का स्वर मुखर है। 'बायरन और शेली द्वारा गृहीत स्वातन्त्र्य का वैभवीकरण, स्वाभाविक मनोवृत्तियों का प्रकाशन आदि फ्रांस की राज्यक्रान्ति की कुछ प्रवृत्तियाँ मानवतावादी विचारधारा के बृहद्-प्रवाह में लीन हुई।[2] साथ ही साथ शेली में कल्पना वैभव तथा विस्मय की भावना, वर्ड्सवर्थ में प्रकृति प्रेम एवं दार्शनिक निरूपण और कीट्स में सौन्दर्यांकन, ऐन्द्रिकता एवं कलाकारिता अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इन कवियों ने अपने साहित्य में एक युग का ही प्रचलन किया जो बाद में 'स्वच्छन्दतावादी युग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन कवियों का प्रभाव अन्य साहित्यों पर भी पड़ने लगा। १६ वीं शती के अन्त तक इनका प्रभाव बंगला साहित्य पर दिखाई दिया और विश्व कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने इस काव्य-धारा को ग्रहण किया।

---

१. "The Romantic Spirit can be defined as an accentuated predominance of emotional life, provoked or directed by the exercise of imaginative vision and on its turn stimulating or directing such exercise."
(A History of English Literature-by Legonis and Cazamain: P. 977.)

२. The absorption by Byron and Shelley of certain aspects of the French Revolution, the glorification of Liberty, the vindication of the natural instincts these matters that merged into the great stream of Humanitarian Sentiment' (A History of English Literature by Compton Rickett: P. 294)

समभा और हिन्दी काव्य-धारा के कर्णधार बने। इस अवसर पर सन् १९१० के "इन्दु" मासिक में प्रसाद का "कवि और कविता" नामक लेख की ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—"सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं, उनके अनुकूल कवितायें नहीं मिलती और पुरानी कविता को पढ़ना तो महादोष-सा प्रतीत होता है।" इससे ज्ञात होता है कि ये कवि अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति कितने सतर्क थे। पंत ने नवीनता और भावुकता का समर्थन किया। ऐतिहासिक महत्व प्राप्त "पल्लव" के "प्रवेश" में कवि लिखता है कि नयी भावात्मक (छायावादी) कविता में "नये हाथों का प्रयत्न, जीवित साँसों का स्पन्दन, आधुनिक इच्छाओं के अंकुर, वर्तमान के पद चिह्न, भूत की चेतावनी, भविष्य की आशा अथच नवीन-युग की नवीन सृष्टि का समावेश है। उसमें नये कटाक्ष, नये रोमांच, नये स्वप्न, नया हास, नया रुदन, नया हृत्कम्पन, नवीन वसन्त, नवीन कोकिलाओं का गान है[1]।" कवि पंत भी अपने युग और उसकी आकांक्षाओं के प्रति सजग हैं। उनका कथन है कि भावों के साथ भाषा एवं अभिव्यंजना-प्रणाली भी बदले, उन दोनों में संतुलित सामंजस्य स्थापित हो और वे एक दूसरे में लीन होकर अपमान हो, उनके ही शब्दों में 'नवीन युग की नवीन आकांक्षाओं, क्रियाओं, नवीन इच्छाओं, आशाओं के अनुसार उस की वीणा से नये गीत, नये राग,

---

१. "पल्लव का "प्रवेश"—सुमित्रानन्दन पंत—इण्डियन प्रेस प्रकाशन : तृतीयावृत्ति, पृ० १८।

नयी रागिनियाँ, नयी कल्पनायें तथा भावनायें फूटने लगती हैं¹। इस प्रकार छायावादी कवि ने युग की माँग को पूर्ण रूप से पहचाना था।

इसके अतिरिक्त सभी छायावादी कवि मध्यवर्गी के हैं और प्रायः इसी कारण कुछ आलोचक छायावाद को मध्यवर्गीय चेतना का विद्रोह मानते हैं। इस काल की परिस्थितियों और विचारधाराओं ने विविध रूप में जीवन और काव्य को प्रभावित किया पूँजीवाद का विकास और व्यक्तिवाद का जन्म, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का उदय, प्रथम विश्व-युद्ध का प्रभाव, राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी का आन्दोलन और सम्पूर्ण समाज में स्वतन्त्र-प्रेम का जागरण, नयी पीढ़ी पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव तथा अंग्रेज रोमैण्टिक कवियों से प्रभावित होना कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति श्रद्धा, बंगाल में ब्रह्मसमाज का आन्दोलन और राजाराम मोहन राय के क्रान्तिकारी विचार, स्वामी दयानन्द सरस्वती का कर्मकाण्डी वैष्णव धर्म के विरुद्ध आन्दोलन-इन विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने मिलकर छायावाद को जन्म दिया। छायावाद का काल १९१५ ई० के आसपास से १९४२ ई० तक माना जाता है।

वास्तव में छायावाद द्विवेदी-युगीन नीरस, उपदेशात्मक, इतिवृत्तात्मक और स्थूल आदर्शवादी काव्य-धारा के बीच से प्रमुखतः रीति-कालीन काव्य-प्रवृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह के रूप में आया। उसके नामकरण एवं स्वरूप-निरूपण के निमित्त विभिन्न विद्वानों के मत दर्शनीय हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार "पुराने ईसाई सतों के छायाभास (Phantasmata) तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (Symbolism) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कवितायें "छायावाद" कही जाने लगी थी,²" अतः हिन्दी में भी इस तरह की कविताओं का नाम छायावाद पड़ा। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है बंगला में "छायावाद" नाम कभी चला ही नहीं। अस्तु, छायावाद नाम पड़ने का चाहे जो भी कारण रहा हो, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि १९२० ई० के आसपास ही इस नवीन काव्य-धारा का "छायावाद" नाम प्रचलित हो गया।

---

१. "पल्लव" का "प्रवेश"—सुमित्रा नन्दन पंतः पृ० २०। इण्डियन प्रेस प्रकाशन। तृतीयावृत्ति।
२. "हिन्दी साहित्य का इतिहास"—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ० ६२१।

प्रारम्भ में अधिकतर विद्वानों का मत यही था कि रहस्यवाद और छायावाद एक ही हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी छायावाद को बंगला की रहस्यवादी कविताओं का अनुकरण छायानुवाद मानते थे। बाद मे रहस्यवाद में भेद किया जाने लगा और रहस्यवाद को मिस्टिसिज्म (Mysticism) और छायावाद को स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का द्योतक माना जाने लगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल छायावाद को स्वच्छन्दतावाद से भिन्न मानते थे। वे उसे दो अर्थों में ग्रहण करते थे, एक तो रहस्यवाद के सीमित अर्थ में और दूसरे प्रतीकवाद या चित्रभाषावाद के अर्थ में। उनका कथन है कि "हिन्दी में "छायावाद" शब्द का जो व्यापक अर्थ रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं के सम्बन्ध में भी ग्रहण हुआ वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ में छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उस की व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है[1]।" इस प्रकार रामचन्द्र शुक्ल स्वच्छन्दतावाद को छायावाद से भिन्न और रहस्यवाद को छायावाद का पर्यायवाची अथवा उसी के अन्तर्गत मानते थे। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने एक कदम आगे बढ़कर स्वच्छन्दतावाद को सामाजिक रूढ़ियों से विद्रोह रहस्यवाद को सांसारिक जीवन से विद्रोह और छायावाद को अभिव्यंजनावाद मानकर पूर्व प्रचलित काव्य-शैली के विद्रोह की अभिव्यक्ति माना, परन्तु यह भी स्वीकार किया कि "आगे चलकर छायावाद नाम इतना व्यापक हुआ कि नये रूप-रंग की कोई रचना "छायावाद" में ही अन्तर्भुक्त हो गयी।··· ··· तात्पर्य यह कि अभिव्यंजना का नूतन विधान छायावाद का मुख्य लक्षण रहा है[2]।" इस तरह विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी रामचन्द्र शुक्ल की तरह स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद को विषयवस्तु-व्यंजक और छायावाद को अभिव्यंजना-पद्धति-व्यंजक संज्ञायें मानते हैं।

किन्तु इन सभी विद्वानों ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया कि विषय-वस्तु और अभिव्यंजना-पद्धति एक दूसरे से अविभाज्य और अन्योन्याश्रित हैं। इस दृष्टि से छायावाद केवल अभिव्यंजना की विशेष पद्धति नहीं हो सकता। जयशंकर प्रसाद ने छायावाद की रूप-रेखा, पर ऐसा विचार प्रकट किया है—"जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद नाम

---

१. "हिन्दी साहित्य का इतिहास"—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ० ६६८, नवाँ संस्करण।

२. हिन्दी का सामयिक साहित्य—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : पृ० ५६।

से अभिहित किया गया। रीति-कालीय प्रचलित परम्परा:से जिसमें बाह्य वर्णन की प्रधानता थी, इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नये ढंग से अभिव्यक्ति हुई। ये नवीन भाव आन्तरिक स्पर्श से पुलकित थे। आभ्यान्तर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार मे भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पद-योजना असफल रही। उनके लिये नवीन शैली, नया पदविन्यास आवश्यक था। हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यन्तर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी। शब्द-विन्यास मे ऐसा पानी चढ़ा कि उसमें एक तड़प उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया[1]। यह परिभाषा छायावाद का बहुत-कुछ सही स्वरूप उपस्थित करती है और यह स्पष्ट कर देती है कि छायावाद केवल अभिव्यंजना-प्रणाली या प्रतीक-पद्धति मात्र नहीं है बल्कि, उसमे ऐसे सूक्ष्म और नवीन भावों की योजना भी हुई है, जिनकी अभिव्यक्ति इस विशेष शैली के अतिरिक्त अन्य किसी पद्धति से नहीं हो सकती थी। नवीन आभ्यन्तर अनुभूति को व्यक्त करने के लिए नवीन अभिव्यंजना शैली आवश्यक थी और इसी शैली के काव्य का नाम छायावाद पड़ा। प्रसाद जी ने छायावाद को पूर्ण भारतीय काव्य-प्रवृत्ति कह कर प्रमाणित किया। किन्तु प्रसाद जी के छायावादी दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक होने के कारण आधुनिक प्रयोगवादी रचनायें भी छायावाद के अन्तर्गत गृहीत हो सकते हैं। इसी कारण उनकी परिभाषा मे अतिव्याप्ति दोष आ गया। डॉ० नगेन्द्र और नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद की जो परिभाषाएं दी हैं, उनमे छायावाद की कुछ अन्य तात्त्विक विशेषताओं का समावेश हुआ है। डा० नगेन्द्र के अनुसार छायावाद स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह है। छायावाद मे विद्रोह की व्यापक प्रवृत्ति को उन्होंने पहचाना। किन्तु उस विद्रोह के स्वरूप का स्पष्टीकरण न करने से उनमे अस्पष्टता का दोष आ गया है। वाजपेयी जी छायावाद को रहस्य-वाद से भिन्न मानते हैं। उनके मतानुसार 'नयी छायावादी काव्य-धारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है, किन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवी शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं······इसकी एक नवीन और स्वतन्त्र काव्य शैली बन चुकी है। आधुनिक परिवर्तनशील समाज-व्यवस्था और विचार-जगत् में छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता की, नवीन परिस्थिति के अनुरूप, स्थापना करता है।···छायावादी

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध :-जयशंकर प्रसाद, पृ० १२३-१२४, चतुर्थ संस्करण।

काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य और सामयिक जीवन-परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है।......स्वच्छन्दतावाद सांस्कृतिक-सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न स्वरूप मानता है।..... नवीन काव्य (छायावाद) ने समस्त मानव अनुभूतियों को स्वच्छन्दतापूर्वक स्थान दे दिया'।'[1] वाजपेयी जी की इस परिभाषा में छायावाद की प्रायः सभी मौलिक विशेषताएँ समाविष्ट हो गई हैं। यदि छायावाद केवल आध्यात्मिक काव्य होता तो उसे केवल रहस्यवाद का पर्याय माना जा सकता था, यदि वह केवल प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह की अभिव्यक्ति होता तो उसे स्वच्छन्दतावाद से अभिन्न माना जा सकता था; किन्तु उसकी मूल प्रवृत्ति प्रतिक्रियात्मक नहीं बल्कि रचनात्मक है, जो भारतीय संस्कृति की जीवन्त परम्परा, राष्ट्रीयता की सशक्त भावना और नवीन मानवतावादी आदर्शों की प्रेरणा से अनुप्राणित है। अतः छायावाद, रहस्यवाद, आध्यात्मवाद, स्वच्छन्दतावाद, मानवतावाद, राष्ट्रीयता और सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध आदि विविध प्रवृत्तियों का समग्र रूप है। छायावाद उस जागरण-युग की प्रबुद्ध आत्मा का काव्यात्मक प्रकाशन है। इस दृष्टि से वाजपेयी जी की परिभाषा अधिक स्पष्ट, पूर्ण और समीचीन है।

छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में अधिकतर साम्य होते हुए भी अन्तर है। स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति छायावाद में अवश्य है, पर छायावाद स्वच्छन्दतावाद नहीं है, वह उससे और भी आगे बढ़ा हुआ तथा अन्य कई प्रवृत्तियों का समग्र स्वरूप है। स्वच्छन्दतावाद यूरोप में अठारहवीं शती के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्पन्न और विकसित हुआ। उसके मूल में यूरोप की तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों का प्रतिक्रिया का ही प्रमुख हाथ था। इसके विपरीत छायावाद उसके सौ वर्ष बाद भारत में विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, और धार्मिक परिस्थितियों के बीच विकसित हुआ। यद्यपि दोनों में ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, स्थूल बन्धनों और रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह, सौंदर्य-प्रेम और आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्तियाँ समान रूप से पायी जाती हैं।, पर दोनों के स्वरूप में देश-काल की विभिन्नता के कारण पर्याप्त अन्तर है। अतः छायावाद शब्द स्वच्छन्दतावाद का हिन्दी अनुवाद नहीं है। और न वह यूरोपीय स्वच्छन्द धारा का अन्धानुकरण है। यह तो भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित, भारतीय परिस्थितियों से अनुप्रेरित और प्रथम विश्व-युद्ध के उपरान्त के नवीन मानवतावादी आदर्श पर आधारित हिन्दी की मौलिक काव्य-धारा है। यूरोपीय स्वच्छन्दवादी कविता का

---

१. आधुनिक साहित्य-नन्ददुलारे वाजपेयी : पृ० ३७१-३७२; द्वितीय संस्करण।

विद्रोह केवल सामन्तवादी और उसका समर्थन करने वाली प्रवृत्तियों और रुढ़ियों के विरुद्ध था, 'किन्तु छायावाद का विद्रोह सामन्तवाद के साथ विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध भी था। यूरोप में स्वच्छन्दतावादी कविता के समय तक पूँजीवाद का जितना विकास हो चुका था, उतना भारतीय पूँजीवाद का द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद तक भी नहीं हुआ था। यूरोपीय पूँजीवाद सशक्त था और भारतीय पूँजीवाद स्वयं साम्राज्यवाद के बन्धनों में जकड़ा हुआ था। इसी कारण भारतीय व्यक्ति स्वातन्त्र्य जैसी शक्ति, वेग और तीव्रता नहीं थी। इससे छायावाद कविता उस अर्थ में क्रान्तिकारी कविता नहीं थी जिस अर्थ में यूरोपीय स्वच्छन्दतावादी कविता थी। दोनों के विद्रोह के स्वरूप में अन्तर होने से उनके काव्य-स्वरूप में भी अन्तर आ गया है। छायावाद में स्वच्छन्दतावादी विद्रोह की भावना का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। उससे उसमें सामाजिक बन्धनों से ऊबकर प्रकृति के सौन्दर्य-लोक में रमने की प्रवृत्ति अधिक लक्षित होती है।

संक्षेप में स्वच्छन्दतावाद की निम्नलिखित विशेषतायें छायावाद में पायी जाती हैं—आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति कल्पना की अतिशयता, सौन्दर्य के प्रति अधिक आकर्षण, विस्मय की भावना, सर्वचेतनावाद, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक रुढ़ियों और बन्धनों से विद्रोह, उन्मुक्त प्रेम की प्रवृत्ति, गीत शैली के प्रयोग की अधिकता इत्यादि। इनके अतिरिक्त छायावाद में भारतीय दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन की विविध परम्पराओं की अभिव्यक्ति, आधुनिक युग के भारतीय सांस्कृतिक नव जागरण के विविध पक्षों की (विवेकानन्द और रामतीर्थ की अद्वैत-मूलक भक्ति-साधना, गान्धीवादी मानवतावाद, रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विश्वबन्धुत्ववाद) काव्यात्मक अभिव्यक्ति और राष्ट्रीय भावना एवं विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह आदि प्रवृत्तियाँ भी पायी जाती हैं। इस प्रकार छायावाद हिन्दी साहित्य की एक गौरव-मण्डित काव्य-धारा है जिसके विकास करने वाले हमारे महान् कवियों के नाम सर्वदा गौरव और श्रद्धा से लिये जाते हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—विषयगत, विचारगत एवं शैलीगत।

छायावाद की विषयगत प्रवृत्तियों में नारी-सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण विशेष रूप में दृष्टिगत होता है। नारी और सौन्दर्य में परस्पर सम्बन्ध है। नारी में सौन्दर्य है और सौन्दर्य में नारी-यही रहस्यमय सृष्टि का एक चिरन्तन सत्य है। मानव स्वभावतः सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होता है और उसका, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति नारी पर मोहित होना स्वाभाविक है। भावुक साहित्यकार अपनी उद्दाम सौन्दर्य-लिप्सा के कारण नारी लावण्य की ओर आकर्षित हुआ और अपनी तूलिका से उसके अनुपम सौन्दर्य का मोहक एवं सजीव चित्र अंकित किया। कलाकार का नारी-सौन्दर्य के प्रति प्रेम ही कलाओं में साकार हो गया है। 'अजन्ता' और 'एलोरा' की भव्य मूर्तियाँ, यूनान और रोम की सजीव प्रतिमायें विश्व के विभिन्न कालों तथा देशों के कलाकारों की सौन्दर्यानुभूति के ज्वलन्त प्रमाण हैं। विश्व-काव्य में नारी-सौन्दर्य का अंकन कम मात्रा में नहीं हुआ है। लियोनार्डो-दि-विंची की 'मोनालिसा', होमर के 'इलियड' में 'हेलेन', वाल्मीकि के रामायण में सीता, व्यास के महाभारत में द्रौपदी, कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में शकुन्तला, वर्ड्सवर्थ की कविताओं में 'लुसी', अनातोले फ्रांस के 'थायस' में 'थाया और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'उर्वशी' बनकर केवल सौन्दर्य ने ही अपना साकार रूप प्रकट किया है। छायावादी कवियों ने भी नारी-सौन्दर्य को अनुपम रूप-लावण्य से विभूषित किया है। प्रसाद की 'श्रद्धा', पन्त की 'भावी पत्नी' एवं निराला की 'संध्या-सुंदरी' में नारी अपने पावनतम, सुन्दरतम रूप में अवतीर्ण हुई है। इन कवियों की नारी, हृदय के स्पन्दन और धड़कन से युक्त है, उसमें प्रेम की सरलता के साथ करुणा की द्रवणशीलता, शालीनता, भव्यता एवं लज्जामयी मनोरमता भी वर्तमान है। प्रसाद की 'श्रद्धा' का सौन्दर्य दृष्टव्य है—

> नील परिधान बीच सुकुमार
> खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
> खिला हो ज्यों बिजली का फूल
> मेघ वन बीच गुलाबी रंग!

आह वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घनश्याम,
अरुण रविमण्डल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम !"

—श्रद्धा सर्ग (कामायनी)

छायावाद की नारी भावनामयी कोमलता की साकार मूर्ति है, जो माधुर्य, निश्छलता एवं पवित्रता से प्ररिप्लावित है। पंत द्वारा चित्रित नारी प्रेम के प्रादुर्भाव होने पर, लज्जा के आवरण से छिपती रहती है—

'लाज की मादक-सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की
अधखिले सस्मित गढ़ों से, सीप-से!'

—ग्रन्थि।

प्रसाद ने तो अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा नारी को ही समर्पित किया है। उनकी प्रेमानुभूति में हृदयावेग का आधिक्य होने पर भी उसकी व्यंजना में सूक्ष्मता है। नारी अपने प्रेम-स्निग्ध हृदय का परिचय यों देती है—

'तुमुल कोलाहल कलह मे,
मैं हृदय की बात रे मन।
जहाँ मरू ज्वाला धधकती
चातकी कन को तरसती;
उन्हीं जीवन घाटियों की
मैं सरस बरसात रे मन।'

—निर्वेद सर्ग (कामायनी)

नारी का प्रेमपूर्ण हृदय मानव-जीवन को सरस बनाकर उसे आनन्द के मधुर लोक मे पहुँचा देता है इसी कारण मानव का व्याकुल हृदय प्रेयसी के हृदय से मिलनातुर है। पंत के शब्दो में—

'आज रहने दो गृह काज
प्राण ! रहने दो गृह काज।'

एक ओर [illegible] और सौन्दर्य के [illegible] है। प्रसाद ने इसी पुरुषों के [illegible] किया है—

'यह लीला जिसकी विकस चली वह मूल शक्ति थी प्रेम कला'

—काम सर्ग (कामायनी)

प्रेमानुभूति के [illegible] की [illegible] एवं मनोहारिता पंत के इन पंक्तियों में द्रष्ट[illegible] है—

'एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय सम्बन्ध था।'

—ग्रन्थि

अधिकतर इन कवियों की प्रेमानुभूति वियोगजन्य है। विरह वेदना एवं करुण-भावना उनके काव्य का मूल स्वर है। महादेवी तो पीड़ा में ही प्रियतम को खोजती हैं—

'तुम को पीड़ा म ढूँढा, तुम मे ढूँढ़ूँगी पीड़ा।'

प्रसाद के वैयक्तिक प्रेम की स्मृति घनीभूत पीड़ा बनकर स्मृति-पटल पर छा गयी और वही दुर्दिन मे 'आँसू' बनकर बरस पड़ी। पंत का कवि हृदय प्रेम-वंचित होकर 'ग्रन्थि' मे बिलख उठा और उसने काव्य की मूल-प्रेरणा वियोग की घोषणा की। प्रायः इसी कारण छायावादी काव्य को विरह-वेदना का काव्य कहा गया है।

छायावादी कवियों ने स्थूल शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा सूक्ष्म परोक्ष सौन्दर्य को महत्त्व दिया है। वे सौन्दर्य को रूपकात्मक से कहीं अधिक भावात्मक मानते हैं। फलतः उनके सौन्दर्य-दर्शन मे व्यापकता आ गयी है। वे प्रकृति के अणु-परमाणु मे उसी असाधारण एवं सूक्ष्म-सौन्दर्य की झलक पाते हैं। प्रायः इसी कारण प्रकृति छायावाद के प्राणों मे समा गयी है। सृष्टि मे सौन्दर्य की अभिव्यक्ति या तो प्रकृति के रूप मे हुई है या तो नारी के। अतः छायावादी काव्य मे प्रकृति कहीं नारीमय दिखाई देती है और कहीं नारी प्रकृतिमय। प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य का अत्यन्त मनोरम एवं आकर्षक अंकन पंत-काव्य मे अधिक उपलब्ध हैं। महादेवी की तूलिका से अंकित प्रभात का सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

"चुमते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन कन से फूट-फूट, मधुमय निर्झर से सजल गान !"
"सौरभ का फैला केश-जाल, करती समीर परियाँ विहार,
गीली केशर मद झूम झूम, पीते तितली के नव कुमार।"
—आधुनिक कवि, प्रथम भाग १ पृष्ठ :२५

प्रकृति के इन सौन्दर्य-चित्रों में उसके बाह्य रूप एवं तज्जनित प्रभाव की मनो अभिव्यक्ति हुई है। प्रसाद ने प्रकृति के रूप में नारी-सौन्दर्य की झलक पायी है प्राकृतिक नारी का रूप अत्यन्त पूर्ण उतरा है—

"पगली हाँ, सँभाल ले कैसे, छूट पड़ा तेरा अंचल,
देख, बिखरती है मणिराजी, अरी उठा बेसुध चंचल॥
फटा हुआ था नील वसन क्या, ओ यौवन की मतवाली।
देख अकिंचन जगत लूटता, तेरी छवि भोली भाली।।"
—आशा सर्ग (कामायनी)

इसी प्रकार पंत की भावी पत्नी प्राकृतिक सुषमा एवं सरलता से विभूषित है प्राकृतिक परिधान के बीच नारी सौन्दर्य कितना आकर्षक है।

"खोल सौरभ का मृदु कच जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,
सीखते होंगे उड़ खग बाल
तुम्हीं से कलरव केलि विनोद,
चूम लघु पद चंचलता, प्राण।
फूटते होंगे नव जल स्रोत,
मुकुल बनती होगी मुसकान।"
— भावी पत्नी के प्रति (गुंजन)

छायावादी कवियों की एक विशेष प्रवृत्ति उनकी रहस्य भावना भी है। अपनी अन्तः स्फुरित अपरोक्ष अनुभूति द्वारा ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है अथवा ब्रह्म के प्रति प्रेमानुभूति ही रहस्यवाद है। स्वभावतः रहस्यानुभूति मनुष्य की श्रेष्ठतम एवं उदात्ततम अनुभूति है और जाति, धर्म एवं राष्ट्रगत संकीर्णताओं से परे है। यद्यपि सभी छायावादी कवियों में यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती

है, किन्तु उसके रूप वर्ग में केवल महादेवी वर्मा में यह पायी जाती है। रहस्यवाद के दृष्टिकोण से इन कवियों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. दार्शनिक रहस्यवादी—निराला।
२. प्रकृति सम्बन्धी रहस्यवादी-पंत।
३. प्रेम और सौन्दर्यमूलक रहस्यवादी-प्रसाद एवं महादेवी।

निराला ने रहस्यवाद को दार्शनिक का सा चोगा पहना दिया है। उन्होंने जीवात्मा रूपी अभिसारिका मे उस अनन्त अज्ञात प्रियतम के प्रति जिज्ञासा प्रकट की है—

"हृदय में कौन जो छेड़ता बाँसुरी
हुई ज्योत्स्नामयी, अमिल मायापुरी
कौन स्वर सलिल में मैं बन रही मीन
स्पष्ट ध्वनि, आर्वानि, सजी यामिनी भली।"

पंत का रहस्यवाद रुढ़ि ग्रस्त नहीं है। वे प्राकृतिक व्यापारों को शिशुचक्षुओं से देखकर उन्हें जानने की अभिलाषा एवं जिज्ञासा प्रकट करते हैं। यही स्वाभाविक उत्सुकता ने उनकी कतिपय रचनाओं को रहस्यवाद के रंग मे रंग दिया है—

"स्तब्ध ज्योत्स्ना मे जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन।
—मौन निमंत्रण

प्रसाद की रहस्यात्मक प्रवृत्ति कामायनी में अधिक मुखरित है। "कामायनी" का मनु अलौकिक व्यापक प्राकृतिक उपकरणों को देख जिज्ञासायुक्त प्रश्न करता है—

"महानील इस परम व्योम में
अन्तरिक्ष मे ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण
किस का करते हैं संधान।"

—आशा सर्ग (कामायनी)

महादेवी अनिर्वचनीय सत्ता से प्रणयानुभूति एवं प्रेमानुभूति का अनुभव करती हैं। कभी वे अपने अनन्त प्रियतम को और जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखती हैं तो कभी अपने हृदयस्थ प्रियतम के विषय में प्रश्न करती हैं—

'कौन मेरी कसक में नित, मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में घुमड़घिर आता अपरिचित ?
स्वर्ण स्वप्नों का चितेरा, नींद के सूने निलय में
कौन तुम मेरे हृदय में ?

…आधुनिक कवि, भाग १।

छायावादी कवियों ने दर्शन के क्षेत्र में अद्वैतवाद एवं सर्वात्मवाद को ग्रहण किया है। अद्वैतवाद के प्रमुख प्रवर्तक शंकराचार्य के अनुसार अद्वैत मत में ही समस्त प्राणियों की सत्ता माया के कारण विद्यमान है। प्राणी माया के आवरण में जीकर उसी में विनाश या अंत को प्राप्त होता है। इस प्रकार अद्वैतवाद सर्वतः मायावाद से सम्बद्ध हैं। ईश्वर और प्राणी में अटूट सम्बन्ध होने पर भी वे मायावश पृथक प्रतीत होते हैं। इन कवियों में निराला ने इस दर्शन को सुन्दर वाणी दी है और उनकी 'तुम और मैं कविता इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है।

'तुम तुंग हिमालय शृंग,
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास,
और मैं कान्त-कामिनी कविता।'

…अपरा।

इस तरह कवि ने प्राणी एवं ईश्वर का सम्बन्ध शाश्वत सिद्ध किया है।

पंत की रचनाओं में कहीं कहीं सर्वात्मवाद एवं सर्वचेतनावाद की झलक मिलती है। कवि सृष्टि के हर एक पदार्थ में एक चिरन्तन तत्व का आभास पाता है और कहता है कि उन वस्तुओं के गुण-स्वरूप के अनुसार वही तत्व अनेक रूप धारण करता है।

'एक ही तो असीम उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास,
तरल जलनिधि में हरित-विलास
शान्त अम्बर में नील विकास'

विविध द्रव्यों में विविध प्रकार
एक ही मर्म मधुर झंकार।'

····परिवर्तन (पल्लव)

छायावाद ने धार्मिक क्षेत्र में रूढ़ियों का विरोध कर, व्यापक मानव-हितवाद का समर्थन किया है। विकासशील मानव-जीवन और उस के परिवर्तित दृष्टिकोण के अनुसार विश्व-मंगल की भावना से उनका काव्य सुशोभित है। प्रसाद इस मंगलमय विश्व को मिथ्या मानकर, निवृत्ति मार्ग पर चलने वालों पर काम के अभिशाप के रूप में व्यंग्य करते हैं।

'कल्याणभूमि यह लोक' यही श्रद्धा रहस्य जाने न प्रजा
अतिचारी मिथ्या मान इसे परलोक वंचना से भर जा।'

···इड़ा सर्ग (कामायनी)

प्रसाद की 'कामायनी' का प्रतिपाद्य पक्ष भी मानव-हितवाद से अत्यधिक सम्बन्धित है। मानव का स्वयं सुखी रहकर अन्यों को भी सुखी बनाने का लोकादर्श ग्रहण करें। कवि को यही अभीष्ट है। देखिये—

"औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।'

····कर्म सर्ग (कामायनी)

प्रसाद की यह धारणा अंग्रेजी के उपदेश 'जियो और जीने दो" (Live and-let live) के अधिक समीप है।

छायावादी कवियों ने सामाजिक क्षेत्र में समन्वयवाद को प्रश्रय दिया है। मानव स्वभाव अति को ग्रहण नहीं कर सकता और यदि ग्रहण भी करे तो वह उसके विकार का ही सूचक है। पंत को मानव-जीवन में सुख-दुख का समन्वय अभीष्ट है तो प्रसाद पुरुष और नारी, व्यक्ति और समाज, बुद्धि और हृदय, प्रकृति और पुरुष, सुख और दुख, ज्ञान, इच्छा और कर्म एवं काव्य और दर्शन इन सभी का संतुलित समन्वय चाहते हैं—

१. "अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न
"मानव जग में बँट जावें
दुख सुख से औ' सुख दुख से।"

··गुंजन (पंत)

२. "ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सकें
एक विडम्बना है जीवन की।"

····रहस्य सर्ग (प्रसाद)

साहित्य के क्षेत्र मे छायावादी कवि व्यापक कलावाद एवं सौन्दर्यवाद के अनुगामी हैं। सभी कवि उच्च कोटि के कलाकार हैं और उनकी रचनाओं को देखने से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक शब्द के प्रयोग मे वे कितने सजग एवं सतर्क रहे हैं। इन कवियों मे भी कलाकार के रूप मे पंत का स्थान सर्वोपरि है। इन सभी कवियों ने शब्द शक्तियों का प्रचुर प्रयोग किया है।

सौन्दर्य की ओर आकर्षित हो जाना मानव की सहज प्रवृत्ति है और यह उसके माध्यम से आनन्द प्राप्त करता है। सौन्दर्य को ओर अत्यधिक आकर्षित होने के कारण कवि या कलाकार मे सौन्दर्य प्रसूत आनन्द का संचार होता है। उस आनन्द को हृदय में न समा सकने के कारण कवि उसे वाणी द्वारा व्यक्त करता है जो मानव मात्र के आनन्दानुभूति का विषय बन जाता है। वास्तव मे सौन्दर्य एक अनिर्वचनीय तत्त्व है। प्रसाद इसके विषय मे लिखते हैं।

"उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं
जिसमे अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं"

····लज्जा सर्ग (कामायनी)

इसमे प्रसाद ने सौन्दर्य के विषयीगत (उज्ज्वल वरदान चेतना का) और विषय गत (जिसमें अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं) दोनों पक्षों का सुन्दर समन्वय किया है।

नारी-सौन्दर्य, प्रकृति-सौन्दर्य एवं भावना-सौन्दर्य ने इन कवियों की वाणी में सफल अभिव्यक्ति पायी है। फिर भी इन कवियों मे सौन्दर्याङ्कन की दृष्टि से पन्त अद्वितीय हैं। वे हर एक विषय को, हर एक भाव को सौन्दर्य के परिधान मे व्यक्त करते हैं और इस सौन्दर्य भावना से उनका काव्य सदाकार हो चुका है।

छायावाद की शैलीगत प्रवृत्तियों मे उसकी मुक्तक गीति शैली सर्व-प्रधान ध्यान आकर्षित करती है। आत्मगत अनुभूतियों की संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य

है। छायावादी कवियों द्वारा गीतों की एक विशाल राशि निर्मित की गयी है। भाव-तत्त्व और लयतत्त्व का सामंजस्य और समत्व, आत्माभिव्यक्ति, अनुभूतियों की सूक्ष्मता और सच्चाई, भावावेगों की तीव्रता और अन्विति, उद्देश्य की एकता और प्रभावा-न्विति, कोमलता और संक्षिप्तता आदि छायावादी गीतिकाव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं। इन कवियों की नवीन उदात्त कल्पना एवं भावुकता नवीन छन्दों के निर्माण में सहायक हुई हैं। पन्त ने संगीत और गीत का पूर्ण ध्यान रखते हुए छन्दों का भावा-नुकूल परिवर्तन करके गीति-कला को विकसित किया। निराला ने लय और ताल के आधार पर स्वच्छन्द छन्द की सृष्टि की तथा अन्य नवीन छन्दों का निर्माण किया। महादेवी ने प्राचीन ग्राम गीतों में कलात्मक प्राण फूँक कर एक अपूर्व सौन्दर्य प्रदान किया। इस प्रकार छायावाद की शैली में ललित सूक्ष्मता वर्तमान है।

छायावादी कवियों ने भाषा में व्यंजकता लाने के लिये प्रतीकों का प्रयोग किया है। 'चाँदनी का स्वभाव में भास, विचारों में बच्चों में बच्चों के साँस'।[1] इन पंक्तियों में 'चाँदनी' स्निग्धता एवं शीतलता का तथा 'बच्चों के साँस' भोलेपन का, प्रतीक है। इन कवियों ने प्राचीन एवं नवीन अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। लाक्षणिकता के कारण उनकी भाषा शक्तिमयी बन गयी। कहीं-कहीं तो दुहरी लक्षणा तक का प्रयोग मिलता है, जैसे "मर्म पीड़ा के हास"। ये कवि चित्रमय विशेषणों द्वारा भाव को मूर्तिमान करने में निपुण हैं। 'स्नेह' के लिये 'हृदय की सुरभित साँस' तथा 'निर्झर' के लिए 'मूक गिरिवर का मुखरित गान' कहने से 'स्नेह' और निर्झर के स्वरूपों की भावमयी व्यंजना हुई है। उन्होंने मानवीकरण और विशेषण विपर्यय आदि विदेशी अलंकारों को अपनाकर अपनी शैली के अर्थगौरव को बढ़ाया। इन गुणों के अतिरिक्त छायावादी-काव्य-शैली में चित्रात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता होने से विशेष सौन्दर्य आ गया है। निम्नलिखित पंक्तियों में शब्द स्वयं अपनी ध्वनियों से ही अर्थ-बोध एवं रस-बोध कराना द्रष्टव्य है—

"शत-शत के फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कारभयंकर"

—पंत।

'छम-छम का बंधन छिन,
छिन-छिन रव किंकिणी।
रणन-रणन नूपुर उर
लाज लौट रंकिणी।'

—निराला।

---

१. आँसू—पल्लविनी—सुमित्रानन्दन पन्त पृ० ७८, तृतीय संस्करण।

अपनी इस भाषा-शैली का उचित निर्वाह के लिये इन कवियों ने संस्कृत के कोमल-कान्त-पदावली का उपयोग किया है। उन्होंने अधिकतर मानव-जीवन के कोमल एवं सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति की और तदनुरूप कोमल शब्दों को चुना है। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ गई है कि भयानक रस का अंकन भी कोमल शब्दों में ही सुचारु रूप से किया गया है—

"हिल हिल उठता है टलमल,
पद दलित धरातल !"
····परिवर्तन (पंत)

निस्संदेह छायावाद ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना सुनिश्चित स्थान पा लिया है। इसी के अन्तर्गत महान् कवियों का प्रादुर्भाव हुआ और उनके व्यक्तित्व एवं महानता के आलोक में यह काव्य कल्पात तक अपनी प्राण-शक्ति का परिचय देता रहेगा। हमें यह न भूलना चाहिए कि छायावाद हिन्दी साहित्य को एक विशेष प्रवृत्ति का द्योतक होने पर भी, वह विश्व-साहित्य का एक अनश्वर अंश है, जिस पर हिन्दी संसार सदा के लिए गर्व कर सकता है। कुछ आलोचकों ने यह घोषित किया है कि छायावाद का पतन हो चुका है, पर मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि जब तक मानव-जीवन में प्रेम और सौन्दर्य का उचित मूल्य रहेगा, जब तक मानव में कोमलता सहृदयता एवं संवेदनशीलता आदि उदात्त भावनायें रहेंगी और जब तक मानव मानव बनकर जीवित रहेगा, तब तक मानव-जीवन के चिरन्तन मूल्यों एवं उदात्त भावों को लेकर चलने वाला छायावाद अजर और अमर रहेगा। यह सामयिक साहित्य से नितान्त पृथक एवं भिन्न है। छायावाद को काव्य देश-काल की सीमाओं को लाँघ कर मानव-जीवन को निर्मल कान्ति से सदा के लिए दीपित करता है। सामयिक माँग की पूर्ति के निमित्त जो साहित्य का प्रणयन होता है, वह शीघ्र ही काल-कवलित हो जाता है, जिसके अनेक उदाहरण विश्व-साहित्य में उपलब्ध हैं और उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं। जिस साहित्य में जितने व्यापक आदर्श और सूक्ष्म मानव-भावनाओं एवं क्रिया-कलापों का अंकन होगा, वह उसी मात्रा में चिरन्तन रहेगा। इसी कारण कालिदास और शेक्सपियर कभी पुराने नहीं हो सकते। यही छायावाद की अनश्वरता का रहस्य है और वह विश्व-साहित्य-सरोवर का सुगन्ध-परिमल-युक्त अम्लान अरुण सरोज है। अस्तु।

पंचम परिच्छेद

पंत-काव्य का कला-पक्ष
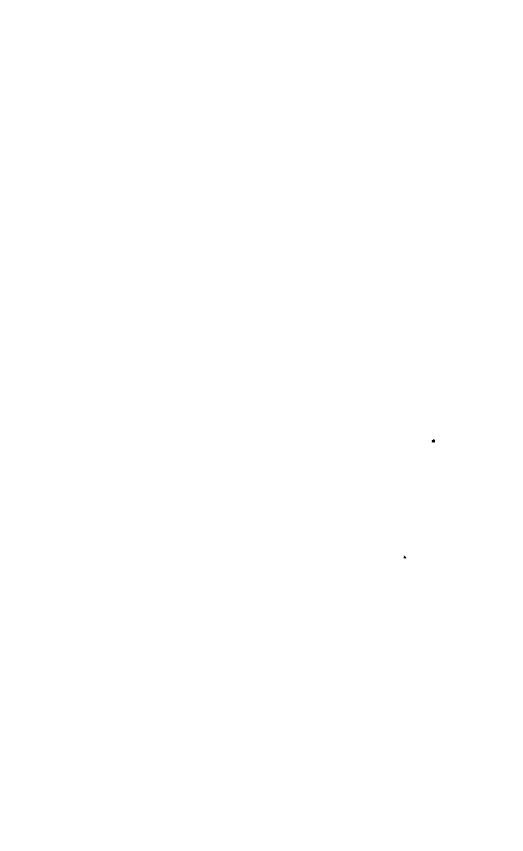
(क) काव्य-कला

कलाओं में काव्य-कला का सर्वोत्कृष्ट स्थान माना गया है। काव्य का अंतरंग उसका बोध पक्ष है और बहिरंग कलापक्ष। कलापक्ष काव्य को उत्कर्षमय बनाता है तो अंतरंग कलापक्ष (बहिरंग) को सार्थकता प्रदान करता है। काव्य के बाह्यांग शब्द-चयन, अलंकार, गुण, छन्द, संगीत एवं अभिव्यंजना प्रणाली हैं। कुछ आलोचक बाह्यांग को अधिक महत्त्व नहीं देते, परन्तु असुन्दर बाह्यांग में सुन्दर आत्मा की कल्पना बहुत-कुछ भ्रान्त है। यह सर्वमान्य है कि अंतरंग सौन्दर्य का बाह्यांग से अधिक महत्त्व है। खराद के चढ़ने के बाद ही मणि का सौन्दर्य द्विगुणित होता है। अतः काव्य में कलापक्ष का विवेचन अधिक महत्त्वपूर्ण है। कलाकार अपनी कृति के द्वारा अपनी सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। इसी कारण वह स्थूल भौतिक उपकरणों की सहायता लेता है। उसकी मानसिक अनुभूति और उसको अभिव्यक्त करने के साधनों में जितना ही कम अंतर होगा। वह उतना ही श्रेष्ठ कलाकार होगा। कलाकार जीवन और जगत से गृहीत प्रभावों को भाव की भाषा में परिणत कर कला के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि उनके सम्पर्क में आने वाले हृदयों में वे भाव की भाषा में प्रतिबिम्बित होकर रमणीय हो सकें। "स्थूल जगत को विभिन्न मनोभाव और भावनाओं के अनुसार सुन्दर रूप में परिणत कर लेना ही कला है, जिसका सम्बन्ध जीवन के प्रत्येक क्षण से है"।

हैं। फलतः हमारे कवि ने संस्कृत के शब्दों से अपने काव्य को सुसज्जित किया। उसने अपनी साहित्यिक परम्परा से प्राप्त भाषा का सब से अच्छा उपयोग किया है और उसको उत्कर्ष के शीर्ष बिन्दु तक पहुँचा दिया है। खड़ी बोली को काव्योचित प्रकृष्ट भाषा का स्वरूप देने का एक मात्र श्रेय पंत को है। श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी का कथन सर्वथा समीचीन है—"भाषा के परिमार्जन में पंत का महत्त्व इसलिये और भी बढ़ जाता है कि ब्रजभाषा को मधुर बनाने के लिये ढ़ाई-तीन सौ वर्षों के बीच में एक के बाद एक सैकड़ों कवियों का सहयोग मिलता गया, किन्तु पंत को अकेले ही खड़ी बोली का सौन्दर्य-विन्यास करना पड़ा है[१]।

संस्कृत-शब्द-समूह की ओर झुकने में पंत की व्यक्तिगत परिस्थितियों ने भी काम किया। उनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं, अपितु पहाड़ी है। आज भी पहाड़ी उर्दू के प्रभाव से मुक्त है। इसके अतिरिक्त उन्होंने बाल्यकाल से संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया और उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हुए। बाल्यकाल में पंत की संस्कृतगर्भित भाषा से ऊबकर अध्यापक ने उन्हें सरल भाषा लिखने का आदेश दिया तो उन्होंने 'मित्र के नाम पत्र को समाप्त करते हुए 'सरल भाषा में' लिखा—

'खतोत्तर जल्दी देना'—

'तुम्हारा मोहब्बताभिलाषी मित्र[२]'

बँगला के अध्ययन से उन्होंने यह भलीभाँति समझ लिया कि वह भाषा संस्कृत-शब्दों को पचाकर स्वयं कितनी शक्तिशाली बन गई है। फलतः उन्होंने हिन्दी के शब्द-भण्डार को संस्कृत-शब्दों से विभूषित करने में कुछ उठा नहीं रखा। प्रो० शिवधार पाण्डेय के शब्दों में उन्होंने संस्कृत के विस्मृत शब्दों को ठोंक बजाकर लिया है। संस्कृत-शब्दावली यों तो सभी कवियों ने ली है, किंतु पंत ने उन्हें चुनने में जितनी कलामय सतर्कता दिखाई है, उतनी किसी ने नहीं। कवि के शब्दों में संस्कृत के शब्द जैसे नपे-तुले, कटे-छँटे (diamond cut) होते हैं, वैसे हैं, वैसे नहीं[१]

'पल्लव' के 'विज्ञापन' में कवि ने अपनी भाषा-विषय दृष्टिकोण का परिचय दिया है। आवश्यकतानुसार वे व्याकरण के जड़-नियमों का उल्लंघन करते हैं। उनका कथन है—"मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिंग पुंलिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है। जो शब्द केवल आकारान्त-इकारान्त के अनुसार ही पुंलिंग अथवा स्त्री-लिंग हो गये हैं, और जिनको लिंग का अर्थ के साथ सामंजस्य नहीं मिलता, उन शब्दों का ठीक-ठीक चित्र ही आँखों के सामने नहीं उतरता और कविता में उनका प्रयोग करते समय कल्पना कुण्ठित-सी हो जाती है।' ...'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी' के बदले'..........—'मेरा मनोरम मित्र थी' लिखना मुझे श्रुतिमधुर नहीं लगता[1]। इस तरह व्याकरण के बन्धनों में जकड़े हुए निष्प्राण शब्दावली में कवि ने अपनी जीवनमयी साँसें भरकर उन्हें गतिशील बना दिया है। वे शब्द-शिल्पी हैं और शब्द-निर्माता भी। विद्यार्थी-जीवन में सहपाठी उनको 'मशीनरी आफ वर्ड्स' कहा करते थे। शब्द-चयन में कवि की सुरुचि 'मधुकरी की तरह सतर्क है –

> "सूंघ, चुनकर, सखि! सारे फूल,
> सहज बिंध, बँध, निज सुख-दुख भूल,
> सरस रचती हो ऐसा राग
> धूल बन जाती है मधुमूल।"
>
> —मधुकरी (पल्लविनी)

कवि ने शब्दों को सूंघ-सूंघ कर ग्रहण किया है। यहाँ शब्दों से राग, राग से इसकी निष्पत्ति की ओर संकेत है। उन्होंने शब्दों की आत्मा पहचान ली है, यहाँ तक कि उन्होंने पर्यायवाची शब्दों के सूक्ष्म पार्थक्य को भी स्पष्ट किया है—भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्रायः, संगीत भेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं। 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चंचलता, 'भौंहों' से स्वाभाविक प्रसन्नता ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है।'[2] कवि ने स्वर के स्पर्श से शब्दों के मूल्य को पहचानकर अपनी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचय दिया

---

१. 'पल्लव' का 'विज्ञापन'-सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ग और घ, इण्डियन प्रेस से प्रकाशित, तृतीयावृत्ति।

२. 'पल्लव' का 'प्रवेश'-सुमित्रानन्दन पंत, पृ० २४ व इण्डियन प्रेस से प्रकाशित तृतीयावृत्ति।

'पल्लव' के 'विज्ञापन' मे कवि ने अपनी भाषा-विषयक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। आवश्यकतानुसार वे व्याकरण के जड़-नियमों का उल्लंघन करते हैं। उनका कथन है—"मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिंग पुंलिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है। जो शब्द केवल आकारान्त-इकारान्त के अनुसार ही पुंलिंग अथवा स्त्री-लिंग हो गये हैं, और जिनको लिंग का अर्थ के साथ सामंजस्य नहीं मिलता, उन शब्दों का ठीक-ठीक चित्र ही आँखों के सामने नहीं उतरता और कविता मे उनका प्रयोग करते समय कल्पना कुण्ठित-सी हो जाती है। '...बालिका मेरी मनोरम मित्र थी' के बदले".........—मेरा मनोरम मित्र थी' लिखना मुझे श्रुतिमधुर नहीं लगता"। इस तरह व्याकरण के बन्धनो मे जकड़े हुए निष्प्राण शब्दावली में कवि ने अपनी जीवनमयी ऊर्मि भरकर उन्हे गतिशील बना दिया है। वे शब्द-शिल्पी हैं और शब्द-निर्माता भी। विद्यार्थी-जीवन मे सहपाठी उनको 'मशीनरी आफ वर्ड्स' कहा करते थे। शब्द-चयन मे कवि की सुरुचि 'मधुकरी की तरह सतर्क है —

"सूँघ, चुनकर, सखि ! सारे फूल,
सहज बिंध, बँध, निज सुख-दुख मूल,
सरस रचती हो ऐसा राग
धूल बन जाती है मधुमूल।"

—मधुकरी (पल्लविनी)

कवि ने शब्दों को सूँघ-सूँघ कर ग्रहण किया है। यहाँ शब्दों से राग, राग से इसकी निष्पत्ति की ओर संकेत है। उन्होंने शब्दों की आत्मा पहचान ली है, यहाँ तक कि उन्होंने पर्यायवाची शब्दों के सूक्ष्म पार्थक्य को भी स्पष्ट किया है—भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्राय: [illegible] भेद के कारण एक ही पदार्थ के [illegible]

है। उनके अनुसार शब्दों का अस्तित्व, भावना और संगीत के 'राग' से व्यक्त होता है। राग के द्वारा ही शब्द परस्पर सम्बन्धित होते हैं, अपना तारतम्य अथवा सामंजस्य पाते हैं। कवि के शब्दों में 'राग ध्वनि-लोक की कल्पना है। जो कार्य भावजगत में कल्पना करती, वह कार्य शब्द-जगत में राग, दोनों अभिन्न हैं।.......राग ध्वनि लोक निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है।......राग का अर्थ आकर्षण है, वह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते, हमारा हृदय उनके हृदय में पहुँचकर एक भाव हो जाता है।...... प्रत्येक शब्द एक-एक कविता है, लघु और मलदीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दों की कविता को रस-सारकर बनती है[१]। इस तरह कवि के लिए शब्द एक सजीव सृष्टि है। शब्द एक दूसरे से घुल-मिलकर, अपने अस्तित्व का विसर्जन कर, महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। वे अपनी व्यक्तिगत सत्ता खोकर काव्य में रसात्मक व्यक्तित्व में परिणत हो जाते हैं। कवि कहता है-'शब्दों के भिन्न-भिन्न कण एक होकर रस की धारा के स्वरूप में बहने लगते, उनकी लंगड़ाहट में गति आ जाती, हम केवल रस की धारा को ही देख पाते हैं, कणों का हमें अस्तित्व ही नहीं मिलता।"[२] राग द्वारा शब्द रस बन जाते हैं, अर्थ द्वारा भाव। शब्द और राग की तरह शब्द और अर्थ भी अभिन्न हैं, गिरा अरथ जल-बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।[३] पंत की धारणा भी इससे भिन्न नहीं। देखिये 'कविता में शब्द और अर्थ की अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति में डूब जाते हैं।[४]

राग के माध्यम से अभीप्सित चित्र को आँखों के सामने उपस्थित करने की अपार क्षमता पंत में वर्तमान है। कविता के लिये वे चित्र-भाषा और चित्र-राग चाहते हैं। चित्र-भाषा वह है जिसमें शब्द अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें। भाषा की चित्रमयता और भाव की रसमयता

---

१. 'पल्लव' का 'प्रवेश'-सुमित्रानंदन पंत, पृ० २२-२३, इंडियन प्रेस से प्रकाशित, तृतीयावृति।

२. 'पल्लव' का 'प्रवेश'-सुमित्रानंदन पंत, पृ० ३०, इंडियन प्रेस प्रकाशित, तृतीयावृति।

३. रामचरित मानस—तुलसीदास, पृ० ५१, गीता प्रेस से प्रकाशित।

४. "पल्लव" का "प्रवेश"—सुमित्रानन्दन पन्त, प्रकाशित, तृतीयावृत्ति।

के संयोग से चित्र राग उत्पन्न होता है। जब भाषा भाव को आकार देकर उसके अंतर में राग का उद्रेक कर देती है, तब वह चित्र-भाषा न रहकर चित्र-राग हो जाती है। कवि के शब्दों में "भाव और भाषा का सामञ्जस्य उनका स्वरैक्य ही चित्र-राग है। जैसे भाव ही भाषा मे घनीभूत हो गये हों, निर्झरिणी की तरह उनकी गति और रव एक बन गये हों, छुड़ाये न जा सकते हों ...... ।"[1] इस प्रकार उनकी कविता में "झंकार मे चित्र, चित्र में झंकार" सदा वर्तमान है। कवि पंत का काव्य उनके उक्त कथन का ज्वलंत प्रमाण है और उनके चित्र अत्यन्त सजीव हैं। एक उदाहरण लीजिये—

"आज पल्लवित हुई है डाल,
झुकेगा कल गुंजित-मधुमास,
मुग्ध होंगे मधु से मधुबाल,
सुरभि से अस्थिर मरुताकाश।"

— पल्लव।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार रेखांकित 'मरुताकाश" के स्थान पर 'मरुदाकाश' समास आना चाहिये। किन्तु कवि को 'मरुदाकाश' ऐसा लगा जैसे आकाश मे धूल भर गयी हो, या बादल घिर आये हों और स्वच्छ आकाश देखने को नहीं मिला, इसलिये उन्होंने उसके बदले 'मरुताकाश' ही लिखना उचित समझा। कवि को 'द' मे धूमिलता और 'त' मे निर्मलता दिखाई दी। इससे ज्ञात होता है कि कवि चित्रांकन मे कितना सजग है। कवि कभी कभी एक शब्द से ही पूर्ण चित्र खड़ा करता है। उनके सम्पूर्ण काव्य में यह चित्रात्मकता दर्शनीय है। यथा—

'उड़ गया, अचानक, लो, भूधर
फड़का अपार पारद के पर!
रव शेष रह गये हैं निर्झर!
है टूट पड़ा भू पर अम्बर!

धँस गये धरा मे सभय शाल!
उठ रहा धुँआ, जल गया ताल।

...... उच्छ्वास (पल्लव)

---

१. 'पल्लव' का 'प्रवेश'—सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० २६, इंडियन प्रेस, से प्रकाशित तृतीयावृत्ति।

है। उसके अनुसार शब्दों का व्यक्तित्व, भावना और संगीत के 'राग' से व्यक्त होता है। राग के द्वारा ही शब्द परस्पर सम्मिलित होते हैं, अपना तादात्म्य अथवा सामंजस्य पाते हैं। कवि के शब्दों में 'राग ध्वनि लोक की कल्पना है। जो कार्य भावजगत में कल्पना करती, वह कार्य शब्द-जगत में राग, दोनों अभिन्न हैं।......राग ध्वनि लोक निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है।'' 'राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते, हमारा हृदय उनके हृदय में पहुँचकर एक भाव हो जाता है।...... प्रत्येक शब्द एक-एक कविता है, मधु और मकरंद की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दों की कविता को ला-लाकर बनती है।[1] इस तरह कवि के लिए शब्द एक सजीव सृष्टि है। शब्द एक दूसरे से घुल-मिलकर, अपने अस्तित्व का विसर्जन कर, महत्वपूर्ण हो जाते हैं। वे अपनी व्यक्तिगत सत्ता खोकर काव्य के रसात्मक व्यक्तित्व में परिणत हो जाते हैं। कवि कहता है-'शब्दों के भिन्न-भिन्न चरण एक होकर रस की धारा के स्वरूप में बहने लगते, उनकी संगड़ाहट में गति आ जाती, हम केवल रस की धारा को ही देख पाते हैं, चरणों का हमें अस्तित्व ही नहीं मिलता।''[2] राग द्वारा शब्द रस बन जाते हैं, अर्थ द्वारा भाव। शब्द और राग की तरह शब्द और अर्थ भी अभिन्न हैं, गिरा अरथ जल-बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।[3] पंत की धारणा भी इससे भिन्न नहीं। देखिये 'कविता में शब्द और अर्थ की अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति में डूब जाते हैं।[4]

राग के माध्यम से अभीप्सित चित्र को आँखों के सामने उपस्थित करने की अपार क्षमता पंत में वर्तमान है। कविता के लिये वे चित्र-भाषा और चित्र-राग चाहते हैं। चित्र-भाषा वह है जिसमें शब्द अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें। भाषा की चित्रमयता और भाव की रसमयता

---

१. 'पल्लव' का 'प्रवेश'-सुमित्रानंदन पंत, पृ० २२-२३, इंडियन प्रेस से प्रकाशित, तृतीयावृत्ति।

२. 'पल्लव' का 'प्रवेश'-सुमित्रानंदन पंत, पृ० ३०, इंडियन प्रेस प्रकाशित, तृतीयावृत्ति।

३. रामचरित मानस—तुलसीदास, पृ० ५१, गीता प्रेस से प्रकाशित।

४. "पल्लव" का "प्रवेश"—सुमित्रानन्दन पन्त, प्रकाशित, तृतीयावृत्ति।

पारद के समान स्वच्छ, धवल मेघ-पंखों से भूधर रूपी पक्षी का 'फर-फर' रव से अचानक उड़ जाना, 'झाग भरे निर्झरों' का सघन श्वेत जलदों से धूमिल होकर रव-शेष रह जाना ऐसा लगता है मानों भू पर गगन उतर आया हो। यह भूधर—राग के उड़ने से उत्पन्न रव से सभी विशाल पादप भय-कम्पित होकर धरा में धंस गये हैं और ताल से धुंआ (झाग) मानों उसके अंतर के ताप से उपज कर निकल रहा हो। इस तरह भूधर का, जलधर—पर धरकर 'फर-फर' उड़ने की चित्रात्मक कल्पना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। 'उड़ गया' में उड़ने का हल्कापन का, 'अचानक' में आकस्मिकता का, 'भूधर' में पर्वत की भार-गुरुता एवं विशालता का, 'अपार पारद के पर' में पक्षी के स्वच्छ, धवल विशाल पंखों का, 'फड़का' में उड़ते पंखों की 'फर फर' ध्वनि का, 'निर्झर' में प्रवाहमान झाग भरे पर्वत झरने का, 'रव शेष' में केवल ध्वनि मात्र से सरिता के बोध होने का, 'टूट पड़ा' में अम्बर के एक साथ घनघोर रव में भू पर गिरने का, 'सभय शाल' में भय काँपने वाले विशाल विटपों का, 'धंस गये' में धरा के कर्दम में गहराई तक गड़ जाने का, 'उठ रहा धुआं' में धीरे-धीरे जल के उपरितल से चारों ओर परिव्याप्त भाप का, 'जल गया ताल' में सरोवर के भीतर धीमी गति से सुलगते हुए उष्मा की दाहकता का एक साथ संश्लिष्टबिम्ब के रूप में हमारे मानस-पटल पर अंकित हो जाता है। ऐसे असंख्य मनोरम चित्रों और बिम्बों से उनकी काव्यशाला सुसम्पन्न है।

राग और संगीत के माध्यम से कवि की अभीप्सित चित्र की सृष्टि भी द्रष्टव्य है।

> "अहे वासुकि सहस्र—फन !
> लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
> छोड़ रहे हैं जग के विक्षत-वक्ष : स्थल पर
> शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत-फूत्कार भयंकर !"
>
> ......परिवर्तन (पल्लव)

परिवर्तन रूपी वासुकि का भयंकर रूप इन पंक्तियों में अंकित है। कविता के चरणों के साथ साथ सर्प के अदृश्य चरणों की गुरु-गम्भीर गति एवं उसके चरण नखों से क्षत विक्षत भू-माता के उरस्थल के चित्र, राग और छन्द की गति से ही स्पष्ट हो जाते हैं। चतुर्थ चरण में वासुकि के सहस्र भयद फणों से विष के फेनोच्छ्वसित स्फीत-फूत्कारों का चित्र फुफकार (राग) के प्रवाह से अपने आप चित्रित है। द्वितीय और तृतीय चरणों का राग चतुर्थ से नितान्त भिन्न है; क्योंकि उनमें हर आठ मात्राओं के उपरान्त किंचित् विराम देना है, किन्तु [illegible]

पुष्टि के लिये, राग की परिपूर्णता के लिये आवश्यक उपादान हैं, ये वाणी के चार व्यवहार, रीति, नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।............ये वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव हैं[१]।'

भारतीय समीक्षा-पद्धति में शब्द और अर्थ को चमत्कृत करने के कारण अलंकार दो प्रकार के होते हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। पंत की कविता में दोनों की छटा दर्शनीय है। शब्दालंकारों के प्रयोग के समय कवि सजग रहता है। पंत-काव्य में अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों का निर्वाह सुन्दर रूप में हुआ है।

(१) 'वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर घूमते थे मधुप दल।'

—(अनुप्रास)

'मधुर बाला का मधुर मधु मुग्ध राग'।

(अनुप्रास)

(२) (मूर्छ) [illegible]
(मात्र) [illegible]

([illegible] और अनुप्रास)

(३) '[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]'

([illegible])

(२) 'गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूंद चुका अपने मृदु दल!
लहरों पर स्वर्ण-रेख सुन्दर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।'

—एक तारा (गुंजन)

(३) चाँदी के साँपों-सी रलमल नाचती रश्मियाँ जल में चल
रेखाओं-सी खिंच तरल सरल।'

—नौका विहार (गुंजन)

प्रथम चित्र में सान्ध्य-गगन का वर्णन है। अस्तोन्मुख तरणिबिम्ब की लालिमा नभमण्डल में व्याप्त है। जलदों से रक्त-ज्वाला की लपटें उठकर नीलमणि रूपी आकाश को प्रवाल के रूप में परिणत कर रही हैं और स्वर्णभादीप्त सांध्य-गगन आज लाक्ष-गृह के समान भभक कर जल रहा है। इस तरह मेघों की श्यामलता, गगन की नीलिमा सायंकाल की सहज स्वर्ण-कान्ति को अपने में गलाकर तरणि की रक्तिम आभा नभ-मण्डल में व्याप्त है। 'सोने के सान्ध्याकाल का जतुगृह सा जलने से सुवर्ण लंका का आग की लपटों में जलने का, और 'जतुगृह-सा' शब्द से पाण्डवों को मरवाने के लिए निमित्त दुर्योधन से निर्मित लाक्षागृह के दग्ध होने का-दो पुराण-प्रसिद्ध चित्र एक साथ अपने आप नयनों के सम्मुख घूम जाते हैं।

द्वितीय उदाहरण में दो चित्र हैं। गंगा के निर्मल जल में किरणों का रक्त-कमल (सूर्य) कुम्हलाकर अपने मृदु दलों को मूंद चुका है। लहरों की स्वर्ण रेखायें प्रखर शिशिर के ठण्डक से डरकर भागने वाली अधरों की लालिमा सी नीली पड़ गयी।

तृतीय चित्र में कवि लोल लहरों पर बाह्य मग्न चन्द्र किरणों का रूपांकन करता है। शशि-रश्मियाँ तरल सरल रेखाओं सी जल में खिंचकर रजत सर्पों के सदृश रलमल रलमल नाच रही हैं। रूपरंग से चित्र अधिक सजीव हैं।

कलापक्ष में अलंकारों का विवेचन आवश्यक है। अलंकारों का संबंध मनुष्य के सौन्दर्य-बोध से है वह किसी वस्तु को भी सुन्दर रूप में देखना चाहता है। काव्यों में अलंकारों की यही उपादेयता है। अलंकार काव्य की रुपात्मकता के उत्कर्ष में योग देते हैं। इनके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभाविष्णु और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौन्दर्य-वृद्धि होती है। काव्य में सौन्दर्य लाने के लि उनका योगदान आवश्यक है, अनिवार्य नहीं। कवि पंत का मत है—' अलंकार केव वाणी की सजावट के लिये नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा।

"तुम नृशंस नृप-से जगती पर चढ़ अनियन्त्रित,
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद मर्दित
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमायें खंडित,
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिर संचित!
आधि, व्याधि, बहु वृष्टि, वात, उत्पात, अमंगल,
वह्नि, बाढ़, भूकम्प-तुम्हारे विपुल सैन्य दल,
अहे निरंकुश! पदाघात से जिनके विह्वल
हिल हिल उठता है टलमल
पद दलित धरातल।"

विश्व में परिवर्तन की अनन्त प्रक्रिया को कवि एक दुर्जय क्रूर सम्राट के रूप में अंकित करता है। उस सम्राट के निमित्त कवि प्रगार सैन्यदल का संचय करता है और उसके विध्वंसकारिणी क्षमता पर भी प्रकाश डालता है। पंत का हर एक शब्द इस रूपक-सौष्ठ निर्माण में उपयोगी है। उदाहरणार्थ 'प्रतिमायें खण्डित' शब्द से ही प्रसिद्ध मूर्ति भंजक गजनी द्वारा नाश-प्राप्त असंख्य हिंदू मन्दिरों की कलात्मक मूर्तियों का चित्र आ उपस्थित होता है।

भाषाकी अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ाने के लिए कवि ने अंग्रेजी के लाक्षणिक प्रयोगों को ग्रहण किया है। लक्षणा द्वारा भाषा में ऐसी शक्ति आ जाती है कि कवि किसी भी क्लिष्ट या अव्यक्त भाव को सुगमता एवं स्पष्टता के साथ व्यक्त कर सकता है। इसी दृष्टि से कवि ने, मानवीकरण (Personification) विशेषण-विपर्यय (Transferred Epithet) अंगी के लिए अंग प्रयोग (Synecdoche) विरोधा भास (Oxymoron) आदि पाश्चात्य अलंकारों को भी लिया है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) 'नियति-वंचिता, आश्रय-रहिता
जर्जरिता पद-दलिता—सी,
धूलि धूसरित मुक्त-कुन्तला,
किस के चरणों की दासी ?'
— (यहाँ छाया का मानवीकरण हुआ है)

(२) 'छिपी पलक से उसे सुलाती
गा – गा नीरव-गान' —अप्सरा।
(विरोधाभास)

(१) धूल की मार्जार बाला सामने
निरख भी निज बाल क्रीड़ा..... ।'

(वर्णसाम्य)

(२) यह मृगी-सी चकित आँखों को फिरा
थी छिपाना चाहती अपनी दशा ।'

(आकार और क्रिया-साम्य)

(३) 'जब विमूर्च्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने किस तरह !) पीयूष सा
एक कोमलतम स्पंदित निःश्वास था
पुनर्जीवन सा मुझे तब दे रहा ।'

(गुण साम्य पूर्णोपमा)

कवि अपनी चित्रोपमाओं के लिये प्रसिद्ध हैं। किन्तु कहीं कहीं कवि उपमाओं के जमघट में ऐसा उतर पड़ता है कि उपमेय ही दुर्लभ्य हो जाता है। 'स्याही की बूंद' पर उपमाओं का काल्पनिक वाग्जाल मेरे कथन का समर्थन करेगा—

अर्ध निद्रित-सा, विस्मृत-सा,
न जाग्रत-सा, न विमूर्च्छित-सा,
अर्ध जीवित-सा, औ मृत-सा,
न हर्षित-सा, न विमर्षित-सा,"

गिरा का है क्या यह परिहास ?'

यह उपमाओं के प्रति कवि के मोह की पराकाष्ठा है।

कवि के रूपक अत्यन्त उज्ज्वल हैं। कवि पत्तों पर गिरने वाले ओस कणों को गगन के आँसू के रूप में देखता है—

'ढालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश'

उनके सांगरूपक अत्यन्त स्पष्ट एवं सुन्दर हैं। सांगरूपक में कवि को रूपक का आद्यन्त निर्वाह सहजता के साथ करना आवश्यक है। इस दृष्टि से पंत के सांग-रूपक हिन्दी-साहित्य में अनुपम हैं। एक उदाहरण—

भावनी है। चरण-शृंगार मे यदि उसका उन्मन गुंजन सुनाई पड़ता है तो वीर और भयानक में वह अग्नि-कण भी उगल सकती है। भाषा का इतना बड़ा शिल्पी हिन्दी में कोई नहीं – हाँ, कभी कोई नहीं रहा।"[१]

पंत ने हमारे काव्य की शक्ति को ही नहीं अपितु भाषा की शक्ति को भी अभिवर्धित किया है, उसमे नूतन स्फूर्ति भरी है, जिसका संस्कार साहित्य-रचना के उन अंगों पर भी पड़ेगा जिनके साथ हम पंत का नाम लेने के अभ्यासी नहीं हैं। कवि पंत के कलाकार का स्वरूप इतना मुखरित है कि उन्हें 'कलाकार कवि' कहने मे कोई अत्युक्ति न होगी।

(ख) पंत-काव्य में गीति तत्व, छन्द-विधान और संगीत

आधुनिक हिन्दी-काव्य अर्थात् (छायावादी-काव्य की भूमिका के रूप मे पाश्चात्य रोमैंटिक काव्य धारा का प्रभाव अधिक पड़ा है। पश्चिमी काव्य-शास्त्र के अनुसार गीतिकाव्य का स्वरूप निम्नलिखित से प्रकट हो जाता है—

अंग्रेजी मे गीतिकाव्य आत्माभिव्यंजक-काव्य के अन्तर्गत आता है। लायर (lyre) अथवा वीणा के साथ गाये जाने वाले गीतों का नाम 'लिरिक' पड़ा। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण मे स्वच्छन्दता की लहर सी उठ चली थी। अंग्रेजी रोमैंटिक कवियों ने (वर्डसवर्थ, शैली, कीट्स, बैरन) काव्य को सौन्दर्य एवं संगीत से भर दिया। वर्ड्सवर्थ ने अपनी पुस्तक "लिरिकेल बेलेड्स" की प्रसिद्ध

१. सुमित्रा नन्दन पंत—डा० नगेन्द्र। पृ० ७१ नवम संस्करण।

(३) 'प्रणय का चुम्बन छोड़ अधीर,
मधर जाते अधरों को भूल'
'(प्रेमियों के लिए अधरों का प्रयोग अंगी के लिये अंग)

(४) 'मनोभावों से बाल विहार
हँसती थी उर में कल तान'
—(विशेषण विपर्यय)

'बाल मनो भावों से विहार' होना चाहिए था। सुवर्ण दिवस को अवसान देने के लिए कवि 'दिवस को दे सुवर्ण अवसान' लिखता है। यहां भी विशेषण विपर्यय मानना उचित है।

काव्य में प्रस्तुत के मूर्तिकरण के लिए अप्रस्तुत का प्रयोग होता है और ऐसे प्रयोगों में कवि की दृष्टि प्रभाव-साम्य पर रहती है। वास्तव में कलाकार जब अपनी अनुभूतियों को भौतिक माध्यम से (भाषा में) अभिव्यक्त करना चाहता है तो वह प्रतीकों को चुन लेता है। प्रतीक (Symbol) शब्द का अर्थ है चिन्ह, प्रतिनिधि या प्रतिरूप। प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य विषय का बोध अपने प्रभावसाम्य के कारण करा सकती है। प्रतीकों के माध्यम से अमूर्त-अदृश्य, अभव्य, अप्रस्तुत विषयों का बोध क्रमशः मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुतों के रूप में होता है। पंत की प्रतीक-योजना अत्यन्त वैभवशाली है। कुछ प्रतीक द्रष्टव्य हैं

'कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, कांस, सिवार'
(प्रथम और द्वितीय पंक्तियां : यौवन और वार्धक्य के प्रतीक)

'चार दिन सुखद चांदनी रात,
और फिर अंधकार अज्ञात।''
(प्रथम और द्वितीय पंक्तियां क्रमशः सुख और दुख के प्रतीक)

इस प्रकार अलंकार, चाहे भारतीय हों चाहे पाश्चात्य, ये हमारे कवि के काव्य में केवल भावोत्कर्षक के रूप में आये हैं, वे साधन रूप में गृहीत हैं, साध्य रूप में नहीं।

पंत-काव्य का कला-पक्ष अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है। संक्षेप में, प्रसाद गुण की स्निग्धता, कोमल कान्त ललित पदावली की सरस शय्या, अर्थ-गाम्भीर्य, अलंकारों का मंजुल प्रयोग, संगीत की तरलता तथा चित्रों की सजीवता पंत के काव्य में अपने भव्य स्वरूप में अंकित हैं। डा० नगेन्द्र के ये शब्द सर्वथा समीचीन हैं 'हमारा कवि भाषा का सूत्रधार है। भाषा उसके इशारे मात्र पर

मानती है। कमल-शृंगार मे यदि उसका उन्मन गुंजन सुनाई पड़ता है तो वीर और भयानक में वह अग्नि-कण भी उगल सकती है। भाषा का इतना बड़ा विधायक हिन्दी में कोई नहीं – हाँ, कभी कोई नहीं रहा।"[1]

पंत ने हमारे काव्य की शक्ति को ही नहीं अपितु भाषा की शक्ति को भी अभिवर्धित किया है, उसमें नूतन स्फूर्ति भरी है, जिसका संस्कार साहित्य रचना के उन अंगों पर भी पड़ेगा जिनके साथ हम पंत का नाम लेने के अभ्यासी नहीं हैं। कवि पंत के कलाकार का स्वरूप इतना मुखरित है कि उन्हें 'कलाकार कवि' कहने मे कोई अत्युक्ति न होगी।

(ख) पंत-काव्य में गीति तत्व, छन्द-विधान और संगीत

आधुनिक हिन्दी-काव्य अर्थात् (छायावादी-काव्य की भूमिका के रूप मे पाश्चात्य रोमैन्टिक काव्य धारा का प्रभाव अधिक पड़ा है। पश्चिमी काव्य-शास्त्र के अनुसार गीतिकाव्य का स्वरूप निम्नलिखित से प्रकट हो जाता है—

अंग्रेजी मे गीतिकाव्य आत्माभिव्यंजक-काव्य के अन्तर्गत आता है। लायर (lyre) अथवा वीणा के साथ गाये जाने वाले गीतों का नाम 'लिरिक' पड़ा। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में स्वच्छन्दता की लहर सी उठ चली थी। अंग्रेजी रोमैण्टिक कवियों ने (वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स, बैरन) काव्य को सौन्दर्य एवं संगीत से भर दिया। वर्ड्सवर्थ ने अपनी पुस्तक "लिरिकल बेलेड्स" की प्रसिद्ध

१. सुमित्रा नन्दन पंत—डा० नगेन्द्र। पृ० ७१ प्रथम संस्करण।

(३) 'प्रणय का चुम्बन छोड़ अधीर
अधर जाते अधरों को भूल'
(प्रेमियों के लिए अधरों का प्रयोग अंगी के लिये अंग)

(४) 'मनोभावों से बाल विहार
हंसती थी घर में कल तान'
—(विशेषण विपर्यय)

'बाल मनो भावों से विहार' होना चाहिए था। सुवर्ण दिवस को अवसान देने के लिए कवि 'दिवस को दे सुवर्ण अवसान' लिखता है। यहां भी विशेषण-विपर्यय मानना उचित है।

काव्य में प्रस्तुत के मूर्तिकरण के लिए अप्रस्तुत का प्रयोग होता है और ऐसे प्रयोगों में कवि की दृष्टि प्रभाव-साम्य पर रहती है। वास्तव में कलाकार जब अपनी अनुभूतियों को भौतिक माध्यम से (भाषा में) अभिव्यक्त करना चाहता है तो वह प्रतीकों को चुन लेता है। प्रतीक (Symbol) शब्द का अर्थ है चिन्ह, प्रतिनिधि या प्रतिरूप। प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य विषय का बोध अपने प्रभावसाम्य के कारण करा सकती है। प्रतीकों के माध्यम से अमूर्त-अदृश्य- अभव्य, अप्रस्तुत विषयों का बोध क्रमशः मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुतों के रूप में होता है। पंत की प्रतीक-योजना अत्यन्त वैभवशाली है। कुछ प्रतीक द्रष्टव्य हैं

'कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, कांस, सिवार'
(प्रथम और द्वितीय पंक्तियां : यौवन और वार्धक्य के प्रतीक)

'चार दिन सुखद चांदनी रात,
और फिर अंधकार अज्ञात।''
(प्रथम और द्वितीय पंक्तियां क्रमशः सुख और दुख के प्रतीक)

इस प्रकार अलंकार, चाहे भारतीय हो चाहे पाश्चात्य, वे हमारे कवि के काव्य में केवल भावोत्कर्षक के रूप में आये हैं, वे साधन रूप में गृहीत हैं, साध्य रूप में नहीं।

पंत-काव्य का कला-पक्ष अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है। संक्षेप में, प्रसाद गुण की स्निग्धता, कोमल कान्त ललित पदावली की सरस शय्या, अर्थ-गाम्भीर्य, अलंकारों का मधुर प्रयोग, संगीत की तरलता तथा चित्रों की सजीवता पंत के काव्य में अपने भव्य स्वरूप में अंकित हैं। डॉ० नगेन्द्र के ये शब्द सर्वथा समीचीन हैं 'हमारा कवि भाषा का सूत्रधार है। भाषा उसके कलात्मक संकेत पर

नाचती है। करुण-शृंगार मे यदि उसका उन्मन गुंजन सुनाई पड़ता है तो वीर और भयानक मे वह अग्नि-कण भी उगल सकती है। भाषा का इतना बड़ा विधायक हिन्दी में कोई नही – हाँ, कभी कोई नही रहा।"[1]

पंत ने हमारे काव्य की शक्ति को ही नही अपितु भाषा की शक्ति को भी अभिवर्धित किया है, उसमे नूतन स्फूर्ति भरी है, जिसका संस्कार साहित्य-रचना के उन अंगों पर भी पड़ेगा जिनके साथ हम पंत का नाम लेने के अभ्यासी नही हैं। कवि पंत के कलाकार का स्वरूप इतना मुखरित है कि उन्हे 'कलाकार कवि' कहने मे कोई अत्युक्ति न होगी।

(ख) पंत-काव्य में गीति तत्व, छन्द-विधान और संगीत

आधुनिक हिन्दी-काव्य अर्थात् (छायावादी-काव्य की भूमिका के रूप मे पाश्चात्य रोमैन्टिक काव्य धारा का प्रभाव अधिक पड़ा है। पश्चिमी काव्य-शास्त्र के अनुसार गीतिकाव्य का स्वरूप निम्नतालिका से प्रकट हो जाता है—
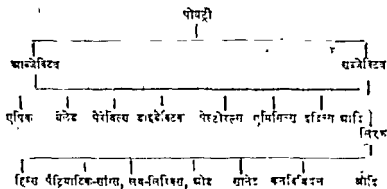
पोयट्री

आब्जेक्टिव | सब्जेक्टिव

(आब्जेक्टिव): एपिक | बैलेड | पैरेबिल्स | डाइडेक्टिक | पेस्टोरल्स | एपिग्रेम्स | इडिल्स आदि

(सब्जेक्टिव): लिरिक

(लिरिक): हिम्स | पैट्रियाटिक-सांग्स, | लव-लिरिक्स, | ओड | सानेट | कन्टेम्प्लेशन | आदि

अंग्रेजी मे गीतिकाव्य आत्माभिव्यंजक-काव्य के अन्तर्गत आता है। लायर (lyre) अथवा वीणा के साथ गाये जाने वाले गीतों का नाम 'लिरिक' पड़ा। अठारहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे स्वच्छन्दता की लहर सी उठ चली थी। अंग्रेजी रोमैण्टिक कवियों ने (वर्ड्सवर्थ, शैली, कोलरिज, बैरन) काव्य को सौन्दर्य एवं संगीत से भर दिया। वर्ड्सवर्थ ने अपनी पुस्तक "लिरिकल बैलेड्स" की भूमि

१. सुमित्रानन्दन पंत—डा० नगेन्द्र। पृ० ७१ [illegible]

भूमिका में लिखा है, "समस्त सुन्दर कविता उदात्त एवं सशक्त भावनाओं का अवि[1]
प्रवाह है[1] ।"

इधर हमारे भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार गीतिकाव्य का स्वरूप परिचय इस तालिका से हो जाता है—
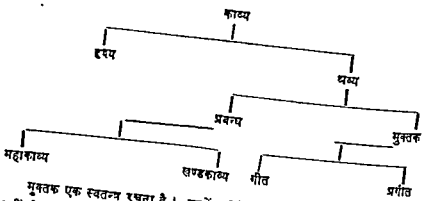
मुक्तक एक स्वतन्त्र रचना है। उसमें रसोद्रेक के लिए अनुबन्ध की आवश्यकता नहीं होती। बाद में मुक्तक ने गीत का रूप धारण कर लिया। संस्कृत की गीत-काव्य-परम्परा में संगीत को विशेष स्थान प्राप्त है। भारतीय गीति-काव्य में नवीन क्रान्ति लाने का श्रेय पीयूष वर्षीय जयदेव को है (१२ वी शताब्दी)। 'गीत गोविन्द' के गीतों में एक बार सौन्दर्य और रस छलक उठा। संस्कृत की इस कोमल-कान्त-पदावली के कवि ने गीतिकाव्य-अमृत उंडेल दिया। 'गीत गोविन्द" का संगीत और काव्य हृदय को स्पर्श करता है। एक पद देखें-(यहाँ मैंने मात्राओं को भी गिना है, जिसका उद्देश्य आगे स्पष्ट करूँगा)—

३ ४ ३ ६ ४ ३ ५
'ललित लवंग लता परिशीलन, कोमल मलय समीरे = २८ मात्रायें

४ ३ ५ ४ ४ ३ ५
मधुकर निकर करम्बित कोकिल, कूजित, कूजित कुंज कुटीरे = २८ मात्रायें

---

1. "All good poetry is the spontaneous over-flow of powerful feelings"-"Wordsworth-Lyrical Ballads" P. 223.

४ ४ ३ २ =१६ मात्रायें

बिहरति हरिरिह सरस बसन्ते ······

७ १ ७ ३ २ ३ ७ २ =२८ मात्रायें

नृत्यति युवति जनेउ सम सखि, विरहि जनस्य दुरन्ते

जयदेव के बाद विद्यापति ने गीतों में शृंगार और प्रेम का सागर लहरा दिया। माधुर्य और शृंगार का नैसर्गिक प्रवाह ही इनके गीतों का प्राण है। माधव के वियोग में सूखती हुई राधा का वर्णन दो पंक्तियों मे देखिये—

४ २ २ ७ ४ =१६ मात्रायें।

'माधव हे अब सुन्दरि बाला

४ ३ २ ७ २ २ ३ २ ४ २८=मात्रायें।

अविरत नयन वारि झरती झर, जनु सावन घन माला।

विद्यापति के उपरान्त सूरदास जी हिन्दी के महाकवि एवं सुन्दर गीतिकार हैं। उनका मधुर, अनन्त सागरगीतों और-रागरागिनियों से लहरा उठा। वेदना और विरह की व्याकुल अनुभूति उनके गीतों का प्राण है। उनका गोपियों का विरह-वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी है—

४ ४ ३ ५ =१६ मात्रायें

"निसिदिन बरसत नैन हमारे

३ ३ ४ २ २ २ २ २ ३ ५=२८ मात्रायें

सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब तें श्याम सिधारे।'

गीतिकाव्य का विवेचन—गीति-काव्य मे संगीत तत्व प्रधान है। गीत में काव्यत्व और संगीत का होना आवश्यक है। गीति-काव्य मे संगीत तत्व से काव्योत्कर्ष को अधिक प्रधानता मिलने लगती है। 'जब मानव-मन किसी रागमयी कल्पना से उद्वेलित होकर अभिव्यक्त हो उठता है तब वह अभिव्यक्ति प्रायः गीतरूप मे होती है'[1] गीतिकाव्य हम उसे कह सकते हैं, जिसमे कवि के निजी भावों तथा कल्पनाओं का अकृत्रिम प्रवाह हो, जिसमें कवि की वैयक्तिकता, उसके निजी सुख-दुख, हास अश्रु, उल्लास-विषाद की तरलता हो, जहाँ कवि अपने आप को भावुक सहृदयों के समक्ष कविता के माध्यम से रख रहा हो। तब उसकी

---

१. काव्य साहित्य के उपकरण डा०-श्यामसुन्दर दास-निबन्ध संग्रह-डा० श्रीकृष्णलाल संकलित-२ संस्करण पृ० १६

वाणी में एकधारा, एक संगीत, एक स्वर, एक छन्द, एक रस की सवन्ती अ पड़ती है। प्रगीत-काव्य में कवि की भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, उस किसी प्रकार के विजातीय द्रव्य के लिये स्थान नहीं रहता। प्रगीतों में ही कवि व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिम्बित होता है। वह कवि की सच्ची आत्माभिव्यं होती है'।[1] गीत के पद-विन्यास में ही संगीत तत्व का मूल निहित है। गीतों कवि अपने संकोच और कुण्ठाहीन व्यक्तित्व और उच्छ्वसित भाव-तरंगों को बा देता है। इस प्रकार वैयक्तिकता गीतिकाव्य की अन्यतम कसौटी है। अबाध कल्पन असीम भावुकता, विशुद्ध भावात्मकता, धर्म-क्षेत्र की चिन्ता से मुक्त विचारधा गीतिकाव्य के मुख्य उपकरण हैं। गीतिकाव्य में कवि की वैयक्तिक भावधारा में अनुभूति को उनके अनुरूप लयात्मक अभिव्यक्ति होती है। एक विचार, ए अमिश्र अनुभूति और भावना अथवा एक संक्षिप्त स्थिति की संगीतात्मक ए भावाविष्ट संक्षिप्त अभिव्यक्ति गीतिकाव्य का प्राण है। गीतिकाव्य में मानवी वृत्तियों की सहज अभिव्यक्ति होती है, अतः उनमें आन्तरिक सौंदर्य-गठन औ अन्तर्वेग की तरलता रहती है। प्रेम का व्यापक भाव काव्य का अधिक प्रिय वि है, वही मानव मन की नाना वृत्तियों का मूलस्रोत है ('यह लीला जिसकी विकस चर्ल वह मूल शक्ति थी प्रेम कला' कला' कामायनी—काम सर्ग-प्रसाद) विश्व के महान गीतिकारों ने उसे उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित करके मनुष्य को पशु की सामान्य स्थिति से ऊँचा उठाया है। गीतिकार सहज ही हमारा आत्मीय बन जाता है वह जन्मजात कवि होता है और उसकी कृति ध्वनि-काव्य है। कम से कम शब्द के सहारे लय और स्वर ताल की अनन्त संगतियों को मिलाकर वह हृदय की विस्मृत भावनाओं और प्रसुप्त संस्कारों को जगा देता है। उदात्त कल्पनाओं को उद्‌बुद्ध करके वह इति वृत्तपूर्ण सांसारिकता से ऊपर उठाने की शक्ति रखता है। गीतिकाव्य के इस संक्षिप्त विवेचन को ध्यान में रख कर पन्त के गीतिकाव्य की किंचित परीक्षा भी हो जानी चाहिये।

पंत की 'वीणा' सुन्दर-गीतों का संग्रह है। उसमें बालकवि का किशोर कण्ठ गीतों का चोत्कार करने लगा। तीव्र अनुभूति, भावों की तरलता शिशु-सुलभ सरलता, स्त्री सुलभ कोमलता इन गीतों की विशेषता है। छन्दों का लय और उपमानों के आलंकारिक प्रतीक अत्यन्त सुन्दर है। इन गीतों में कवि की हृतन्त्री की गुंजार है। कवि के शब्दों में—

---

१. आधुनिक साहित्य-नन्ददुलारे वाजपेयी—द्वितीय संस्करण, पृ० २४।

'मधुबाला की मृदु बोली-सी
यह मेरी वीणा की गुंजार'
'यह अति अस्फुट, ध्वन्यात्मक है
बिना व्याकरण बिना विचार'

—वीणा।

कवि अपने को ही संबोधित करके कहता है कि हे मृदुल कवि! क्यों तुम्हारे भाव रहस्याच्छादित हैं—

'अये मृदुल! यह किस के गीत
गाते हो तुम मधुर पुनीत!
प्रकट क्यों न कुछ कहते हो? क्या
वे इतने हैं गुप्त, परम?
यह कैसा परिहास सुगम!

—वीणा।

वीणा के गीतों में संगीत की तरलता है। कवि कविता-प्रेयसि को सम्बोधित करके कहता है—

'इन नयनों को समझाओ,
इन्हें न लड़ना सिखलाओ,
प्रेयसि कविते। हे निरुपमिते।
कमल-कली में इन्हें डाल कर
हाय! न यों ही ढुलकाओ
पक्ष्माली की केशराशि में
इन्हें न कस-कस बंधवाओ'

—वीणा।

यहाँ बालकवि का क्रीड़ा-कलरव ही नहीं, मातृहीन बालक का करुण-क्रन्दन भी सुनाई पड़ता है—

'निज चरणों में विपुल-विकल
स्नेह-अश्रु बरसाते हैं :'
'करुणा क्रन्दन करने दो!
अविरल स्नेह-अश्रु—जल है माँ।
मुझ को मन-मल धोने दो।

'वीणा' के गीतों में पवित्रता एवं माधुर्य है। उसमें शिशु का कल-कण्ठ है, मति का विमल गान है। कवि गाता है—

'विटप डाल में बना सदन,
पहन गेरुवे रंगे वसन,
विहग-बालिका बन इस बन को
तेरे गीतों से भर दूं
सन्ध्या के उस शान्त समय।"
—वीणा।

विहग-बालिका, कुसुम-कलिका, अलिबाला, इन सब से कवि का तादात्म्य है।

'ग्रन्थि' 'उच्छ्वास' और 'आँसू' कवि के प्रणय-गीतिकाव्य हैं। इन तीनों कवि के निजी सुख दुख, हास-अश्रु, उल्लास-विषाद की तरलता है। कवि अ असफलप्रेम-गाथाओं को अत्यन्त मार्मिक अनुभूति एवं विकलता के साथ गुन है। इन काव्यों में कवि की वैयक्तिकता और भावना के अनुरूप संगीतात्मकता अ उभर आयी है। अपनी प्रेम-कथा की पृष्ठभूमि के रूप में कवि मधुमास का चित्र अंकित करता है—वह मधुमास भी कैसा था, अलिदल—गुंजित, पिककुलकूजि यथा—

'वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल;
रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे,
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।"
—ग्रन्थि।

कवि और उसकी प्रिया के प्रणय सम्बन्ध का यह कैसा निर्मल चित्रांकन है:—

"एक पल मेरे प्रिया के युग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय सम्बन्ध था।"
— ग्रन्थि।

काश, उसका यह प्रेम स्वप्नवत् हो जाता है क्योंकि उसकी प्रिया का परिण बन्धन किसी अन्य पुरुष से हो गया। फलतः उसका प्यार-भार, विषाद में और हास, अश्रु में परिणत हो जाता है। उसकी ऐसी [illegible] दृष्टव्य है—

'हाय मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि बन्धन हो गया, वह नव कमल
मधुप सा मेरा हृदय लेकर किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।'

—ग्रन्थि।

कवि के रुदन का यह विस्फोट कितना करुणाप्लावित है। उसके इस अविरल अश्रु प्रवाह से संगीत के प्रवाह का कितना सुन्दर सामंजस्य है।

'शैवलिनि! जाओ! मिलो तुम सिन्धु से
अनिल! आलिंगन करो तुम गगन को,
चन्द्रिके! चूमो तरंगों के अधर
उडुगणो! गाओ, पवन वीणा बजा!''

—ग्रन्थि।

कवि के 'उच्छ्वास' और 'आँसू' भी उसके भग्न-प्रणय की करुण पुकार मात्र है। इन दोनों कविताओं में भी कवि की मार्मिक विकलता 'पल पल परिवर्तित' छन्दों से ही स्पष्ट हो ही जाती है। कवि की विकलता के साथ छन्द की, राग की धुनि में भी विकलता गूँजती है। देखिये—

'देख हाय! यह उर से रह रह निकल रही है! आह!
व्यथा का रुकता नहीं प्रवाह!

—उच्छ्वास : पल्लव'

अंत में कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस विश्व में कोई दूसरे के हृदय को नहीं समझ सका और इसी प्रकार उसकी प्रिया भी उसे समझने में असफल रही। देखिये—

'कौन जान सका किसी के हृदय को?
सच नहीं होता सदा अनुमान है!
कौन भेद सका अगम आकाश को?
कौन समझ सका उदधि का गान है!''

—उच्छ्वास : पल्लव।

'आँसू' भी वियोगी कवि के हृदय-भार को हल्का करने की चेष्टा का फल है। कवि अपने हृदय के भार को उतारना चाहता है किन्तु आश्रय नहीं—

"हाय किस के उर में
उतारूँ अपने उर का भार
किसे अब दूँ उपहार
गूँथ यह अश्रुकणों का हार"

—आँसू : पल्लव।

"पल्लव" की "परिवर्तन" शीर्षक कविता मे कवि का संगीत एक अटल गाम्भीर्य
-समन्वित है, जो विषय और विचारों के अनुकूल है।

"परिवर्तित कर अगणित नूतन दृश्य निरन्तर,
अभिनय करते विश्व मंच पर तुम मायाकर!
जहाँ हास के अधर, अश्रु के नयन करुणतर
पाठ सीखते संकेतों में प्रकट, अगोचर,
शिक्षा स्थल यह विश्व-मंच, तुम नायक नटवर,
प्रकृति नर्तकी सुघर
अखिल मे व्याप्त सूत्रधर!"

—परिवर्तन : पल्लव।

पंत के "गुंजन" और "ज्योत्स्ना" में सुन्दर गीत वर्तमान हैं। किन्तु इन गीतों
नुभूति एवं वैयक्तिकता की मात्रा कम और अलकृत चित्र एवं अलंकृत संगीत की
झुकाव अधिक है। "तप रे मधुर मन", "भावी पत्नी के प्रति", "नौका-विहार"
तारा" "चांदनी" आदि कविताओ में संगीत का स्वर अधिक उभर आया है।
काव्य की दृष्टि से, कल्पना-वैभव की दृष्टि से, ये अतीव सुन्दर हैं। उदाहरण के
"एकतारा" और "भावी पत्नी के प्रति" की कुछ पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं--

"पत्रों के आनत अधरों पर, सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों मे स्वर!
खग कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गोपथ अब धूलिहीन,
धूसर भुजंग-सा जिह्म क्षीण'

—एकतारा : गुंजन।

'मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण सुख, श्री, सौरभ का सार
मनोभावों का मधुर विलास,
सुषमा ही का संसार,

मेघों का जाना सोल्लास
व्योम बाला का शरदहास,
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान,
प्रिये प्राणों की प्राण।'

—"भावी पत्नी के प्रति" गुंजन

इन रचनाओं के उपरान्त कवि गीतिकाव्य को छोड़कर विचार-प्रधान काव्य-निर्माण में रत हुआ। वास्तव में गीत का आनन्द पढ़कर नहीं बल्कि गाकर लिया जाना चाहिए। पंत के छायावाद काल की समस्त रचनायें गीतिकाव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। अब देखना यह है कि कवि इस संगीत तत्व को अपने काव्य में किस प्रकार ला सका है।

पंत-काव्य में गीति तत्व, छन्द एवं संगीत.—'पल्लव' की ऐतिहासिक भूमिका ('प्रवेश') में पंत ने अपने काव्य के बहिरंग पर प्रकाश डाला है। कविता में राग और संगीत की आवश्यकता का उद्घाटन किया है। उन्हीं के शब्दों में देखिये—'भाषा का, और मुख्यतः कविता की भाषा का, प्राण राग है। राग ही के पंखों की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता सान्त को अनन्त से मिलाती है। राग ध्वनि-लोक-निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है।...राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिच कर हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते, हमारा हृदय उनके हृदय में प्रवेश कर एक भाव हो जाता है, प्रत्येक शब्द एक संकेत मात्र, इस विश्वव्यापी संगीत की अस्फुट झंकार मात्र है। प्रत्येक शब्द एक एक कविता है, लक्ष और मलद्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दों की कविता को खा खाकर बनती है। जिस प्रकार शब्द एक ओर व्याकरण के कठिन नियमों से बद्ध होते उसी प्रकार दूसरी ओर राग के आकाश में पक्षियों की तरह स्वतन्त्र भी होते हैं।'[१] पंत की समस्त रचनाओं में इस कथन का निर्वाह हुआ है। एक उदाहरण—

'विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दल
ज्योतित कर नभ का अंतस्तल।'

—नौका-विहार : गुंजन।

१' पल्लव का प्रवेश पंत, इण्डियन प्रेस से प्रकाशित, तृतीयावृत्ति, पृष्ठ २२-२३।

उपर्युक्त चरणों मे शब्द राग-रूपी सूत्र में पिरोये गये हैं और कविता सस्वर होकर चलती है। शब्द अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हुए भी राग के सूत्र में बंधे हुए हैं और उनका सामूहिक प्रभाव भाव को उत्कर्ष की ओर ले जाने वाला है।

छन्द और संगीत का निकटतम सम्बन्ध है। 'छन्द का, भाषा के उच्चारण, उसके संगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृत का संगीत समास-सन्धि की अधिकता, शब्द और विभक्तियों की अभिन्नता के कारण शृंखलाकार, मेखलाकार हो गया है उसके दीर्घश्वास की आवश्यकता पड़ती है। "संस्कृत का संगीत जिस तरह हिल्लोलाकार मालोपमा में प्रवाहित होता है, उस तरह हिन्दी का नहीं। "हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक-छंदों ही मे अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य का सम्पूर्णता प्राप्त कर सकती है, उन्हीं के द्वारा उसमे सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है।'[1] संस्कृत के वर्ण वृत्तों में हिन्दी अपनी स्वाभाविक संगीत खो बैठती है। एक उदाहरण पर्याप्त है—

म स ज स त त
SSS; I I S, I S I, I I S, S S I, S S I, S
प्लावोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका, राकेन्दु बिम्बानना
म स ज स त त
SSS I I S, I S I, I I S S S I, S S I S
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका, क्रीड़ाकला पुत्तली।"

—प्रियप्रवास 'हरिऔध'

ये शार्दूल विक्रीडित छन्द के दो चरण हैं। हर एक चरण, मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु का होना आवश्यक है। वर्णवृत्त इस प्रकार हिन्दी के अनुकूल नहीं हैं।

बँगला के छन्द भी हिन्दी संगीत के अनुकूल नहीं हैं। बँगला में, अधिकतर अक्षर-मात्रिक छन्दों में कविता की जाती है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी इसी प्रकार छन्दों में रचना की है, जो हिन्दी के स्वाभाविक संगीत से मेल नहीं खाती। एक उदाहरण से इस कथन की पुष्टि हो जायेगी—

३ ३ २ ३ ३ २ = १४ अक्षर।
[illegible]
३ ३ ३ ४ २ = १४ अक्षर।
[illegible]

१ पल्लव का प्रवेश—श्री सुमित्रानन्दन पंत [illegible], पृ० ३३।

३ ३ २ २ ४ = १४ अक्षर।
लभिव मुक्तिर स्वाद एइ वसुधार
४ २ २ २ ४ = १४ अक्षर।
मृत्तिकार पात्र खानि भरि बारम्बार।'

—रवीन्द्र।

हर एक पंक्ति में १४ अक्षर होते हैं, चाहे लघु हो या गुरु। हिन्दी का स्वाभाविक संगीत ह्रस्व दीर्घ मात्राओं को स्पष्टतया उच्चरित करने के लिये पूरा-पूरा समय देता है। मात्रिक छन्द में बद्ध प्रत्येक लघु-गुरु अक्षर के उच्चारण करने में जितना काल तथा विस्तार मिलता, उतना ही स्वाभाविक वार्तालाप में भी साधारणतः मिलता है, दोनों में अधिक अन्तर नहीं होता। यही हिन्दी के राग की सुन्दरता अथवा विशेषता है[1]।' काव्य में संगीत लाने के निमित्त शब्द मैत्री आवश्यक है। काव्य-संगीत के मूल-तन्तु स्वर हैं, न कि व्यंजन, और स्वरों के समुचित प्रयोग से संगीत का सुन्दर निर्वाह हो सकता है। इसी गुण के कारण पंत-काव्य संगीत से ओत-प्रोत है। शब्द-मैत्री से तात्पर्य यह है कि उन शब्दों में मात्रायें ३, ३, ३, ३, ४ या २, २, २, ४; २, ६, ४ ४; ४, ६ होनी चाहिये। ऐसे शब्दों को गूंथने से संगीत तत्व अपने आप आ जायेगा। लय और रागका सन्तुलन पंत-काव्य में सर्वत्र पाया जाता है। आगे कुछ उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किया जाता है।

३ ३ २ ४ ४ = १६ मात्रायें।
"कौन कौन तुम परिहत वसना
३ ३ २ ४ २ = १४ मात्रायें।
म्लान-मना, भू-पतिता - सी।
३ ३ ५ ३ २ = १६ मात्रायें।
वात-हता विच्छिन्न-लता-सी
२ ४ २ ४ २ = १४ मात्रायें।
रति श्रान्ता व्रज वनिता- सी।

—छाया।

३ ५ ३ ३ २ ४ ४ = २४ मात्रायें।
विपुल वासना विकल विश्व का मानस शतदल

---

१. पल्लव का प्रवेश-पंत, इण्डियन प्रेस, में प्रकाशित, तृतीया वृत्ति, पृ० ३८।

१ १ २ १ १ १ २ २ २ २ = २४ मात्रायें।
छान रहे तुम, कुटिल काल-कृमि-से घुस पल पल"

—परिवर्तन : पल्लव।

४ ४ २ ३ १ = १६ मात्रायें।
'कालाकांकर का राज भवन

४ २ २ ५ ३ = १६ मात्रायें।
सोया जल में निश्चिन्त प्रमन

४ २ ७ १ ३ = १६ मात्रायें।
पलकों में वैभव स्वप्न सघन।"

—नौका विहार : गुंजन।

(जयदेव, विद्यापति और सूर के गीतिकाव्य का रहस्य यही है कि उन्हें शब्द-मैत्री का ज्ञान अधिक था। उनके पदों में शब्दों की मात्राओं के गिरने का तात्पर्य यही है कि उनमे शब्द मैत्री है) छन्द के बन्धनों को स्वीकार न करने पर भी यदि शब्द मैत्री पर ध्यान दिया जाय तो मुक्त छन्द मे भी लय और प्रवाह आ जाता है। इस बात को मैं 'निराला' की दो कविताओं को उद्धृत कर स्पष्ट करूंगा, जो मुक्त छन्द मे लिखी गयी हैं।

२ ७
(१) वह आता—

२ १ ५ २ ४ ६ २ २ ४
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।"

—भिक्षुक

२ ३ ३ २ ४ २ ७ २
(२) वह इष्ट-देव के मन्दिर की पूजा-सी

२ ३ ३ २ ३ ३ २ ३
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव मे लीन

२ ३ १ ७ २ ३ ४ २
वह क्रूर-काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी।"

—विधवा, अपरा।

व्यंजनों की अपेक्षा स्वरों की अधिकता कविताओं में गति और प्रवाह लाने में सहायक हुई। इस प्रकार छायावाद के अन्य कवियों की रचनाओं में शब्द-मैत्री एवं छन्द-विधान पाये जाते हैं जो संगीत के अत्यन्त अनुकूल हैं।

'कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है;—कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द-हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। ··· ··· ··· ···कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है। हमारे जीवन का पूर्णरूप, हमारे अन्तरंग-प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द ही में बहने लगता; उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता, स्वरैक्य तथा संयम आ जाता है[1]" सवैया तथा कवित्त छन्द पंत के अनुसार, हिन्दी की कविता के लिये अधिक उपयुक्त नहीं। सवैया में एक ही सगण की आठ बार पुनरावृत्ति होने के कारण उसमें एक प्रकार की एक रसता (monotony) आ जाती है। कवित्त छन्द के एक चरण के अधिकांश शब्दों को मात्रिक छन्द में बांध कर पंत इन दोनों के संगीत का पार्थक्य स्पष्ट करते हैं। 'कूलन में केलिन में कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलित कलीन किलकन्त है'—इस लड़ी को यों सोलह मात्रा के छन्द में रख दीजिये—

> 'सु—कूलन में केलिन में (और)
> कछारन कुंजन में (सब ठौर)
> कलित क्यारिन में (कल) किलकन्त
> बनन में बगर्‌यो (विपुल) बसन्त।"

अब दोनों को पढ़िये, और देखिये कि उन्हीं "कूलन केलिन" आदि शब्दों का उच्चारण-संगीत इन दो छन्दों में किस प्रकार भिन्न भिन्न हो जाता है, कवित्त में परोक्षित, मात्रिक छन्द में स्वकीय, हिन्दी का अपना, उच्चारण मिलता है[2]।"

छन्दों के चुनाव में भी पंत ने अपने प्रौढ़ व्यक्तित्व का परिचय दिया है। कविता में वे व्यंजनों की अपेक्षा स्वरों को अधिक प्रधानता देते हैं, अतः उनकी कविता में संगीत का उचित निर्वाह हुआ है। तुक हिन्दी कविता का एक विशिष्ट गुण है, जो गीतिकाव्य के प्रभाव को बढ़ाता है। पंत के अनुसार तुक राग का हृदय है और जो स्थान ताल में "सम" का है वही स्थान छन्द में तुक का निर्वाह उनके

---

१. पल्लव का प्रवेश-पंत-इण्डियन प्रेस से प्रकाशित, तृतीयावृत्ति, पृ० ३०-३१
२. पल्लव का प्रवेश पंत, इण्डियन प्रेस से प्रकाशित, तृतीयावृत्ति, पृ० ३६।

काव्य में अत्यन्त सुन्दर एवं स्वाभाविक रूप से हुआ है। किन्तु जीवन के आक्रान्त क्षणों को वाणी देते समय पंत ने अतुकांत कविता (Blank verse) का प्रयोग किया है। उनकी अतुकान्त कविता भी छन्दोबद्ध है। उनके अनुसार भिन्न-भिन्न छन्दों की भिन्न-भिन्न गति होती है और तदनुसार वे रस विशेष की सृष्टि करने में भी सहायता देते हैं। हिन्दी के प्रचलित छन्दों में पीयूष-वर्षण, रूपमाला, सखी प्लवंगम आदि करुण उद्गारों और उदासीनता की अभिव्यक्ति के लिए विशेष उपयुक्त लगते हैं। रोला छन्द में प्रवाह और रूपमाला में मन्द गति दिखाई देते हैं। सोलह मात्रा का अरिल्ल छन्द तथा चौदह मात्रा के सखी छन्द की गति में पर्याप्त अन्तर है। पन्द्रह मात्रा का चौपाई छन्द अपने एक सहज ध्वनि से सरिता की भांति बहता है। पंत के काव्य में उपर्युक्त छन्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं उन्होंने लय के आधार पर चलने वाले मुक्त छन्द का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार छन्दों के चुनाव में भी उन्होंने सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन के विवेक का परिचय दिया है।

पंत-काव्य का भाव-पक्ष

स्थान मिला है। भावों का सम्बन्ध हृदय से है तो विचारों का सम्बन्ध बुद्धि से है। इस "वीणा" में बाल-कवि की बाल-भावुकता शत शत गीतों में उमड़ पड़ी है। इन भावों में बालकों की-सी सरलता, निर्मलता, जिज्ञासा, भोलापन शब्द शब्द में दिखते हैं। अपनी काल्पनिक माता के सम्मुख कवि बालिका बनकर आत्म-समर्पण कर देता है और उसे सम्बोधित कर अनेक सुन्दर भाव प्रकट करता है। कभी वह उषा की लालिमा में 'तुहिन बिन्दु बनकर' माता के पद-पद्मों में अपने जीवन को अर्पण करना चाहता है तो कभी तरल-तरंगों में मिलकर उछल उछल कर, हिल-हिल कर अपने क्रीड़ा-कलरव माता के श्रवणों तक पहुंचाना चाहता है—

"तरल तरंगों में मिलकर
उछल उछलकर हिल-हिलकर
माँ! तेरे दो श्रवण पुटों में
निज क्रीड़ा कलरव भर दूँ—
उभर अधखिली वाली में।"

—आकांक्षा : वीणा।

बाल कवि को नारी के रूप—लावण्य से भी प्राकृतिक सुषमा अधिक रुचती है, अतः वह उषा की सुषमा में ही सुध-बुध खोकर तल्लीन रहना चाहता है। यह सुन्दर भाव द्रष्टव्य है—

"ऊषा सस्मित किसलय दल,
सुधा—रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहला दूँ जीवन ?
मुग्ध अभी से इस मन को !"

उसका प्रभाव कवि पर अधिक मात्रा मे रहता है। कवि या कलाकार जिस विषय का अनुभव जितनी मात्रा में करता है, वह उसे काव्य में अंकित कर पाठक या दर्शक के हृदय में भी वैसी ही अनुभूति एवं विह्वलता को जगा सकता है। अपने काव्य-निर्माण के प्रथम चरण मे पंत जी अत्यधिक अनुभूति-प्रवण कवि हैं। "वीणा" मे उन्होंने अपनी काल्पनिक माता के प्रति अनन्य स्नेह एवं प्रेम प्रकट किया है। वहां बालकवि प्राकृतिक दृश्यो और उसके क्रिया-कलापों से अभिभूत हो गया है। इसके अतिरिक्त 'ग्रन्थि' एवं 'पल्लव' की 'उच्छ्वास', 'आंसू' 'परिवर्तन' आदि रचनाओं में कवि के वैयक्तिक प्रेम और विरह की अनुभूति मार्मिक रूप में व्यक्त हुई है, इसके विषय मे स्वयं कवि ने लिखा है 'मेरे जीवन का समस्त मानसिक संघर्ष और अनुभूति की तीव्रता 'ग्रन्थि' और 'परिवर्तन में प्रकट हुई।"[1] वैयक्तिक प्रेम-वैफल्य के कारण 'ग्रन्थि' मे कवि के प्रेम और विरह की अनुभूति अत्यधिक वेग से बह चली है। जब कवि की प्रेयसि का विवाह किसी अन्य युवक के साथ हुआ तो कवि की निराशा-पीड़ा-मिश्रित अनुभूति कितनी व्याकुलता एवं मर्मांतकता के साथ व्यक्त हुई है-देखिए-

> 'हाय मेरे सामने ही प्रणय का
> ग्रन्थि बन्धन हो गया, वह नव कमल
> मधुप-सा हृदय लेकर किसी
> अन्य मानस का विभूषण हो गया।"
>
> —ग्रन्थि।

वियोगी विरह-व्यथा के भार से दब जाता है। वह ब्याह के दिन विजन वन मे आकर आंसू बहाता है। वह अपने को दीन-हीन एवं विधि प्रवंचित पाकर आत्म-ग्लानि मे निमग्न हो जाता है और प्रेम-वैफल्य को संसार के अटल नियम के रूप स्वीकार करता है, क्योंकि—

> "देख रोता है चकोर इधर वहां
> तरसता है तृषित चातक वारि को,
> वह, मधुप विष कर तड़पता है यहीं
> नियम है संसार का, रो हृदय, रो।"
>
> —"ग्रन्थि"।

---

1. आधुनिक कवि २- पर्यालोचन : सुमित्रानन्दन पंत, पृ० १४ ; सातवां संस्करण।

—उच्छ्वास (पल्लव)

'आँसू' में भी कवि की मूक-वेदना सजल अश्रुओं के रूप में प्रकट हुई है। वह अपने जीवन को प्रेम और आँसू के गान के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता। आत्म-ग्लानि की पराकाष्ठा पर पहुँच कर कवि समझता है कि उसके हृदय में प्रेयसि के शून्य पावन स्थान को त्रिभुवन का वैभव भी पूरा नहीं कर सकता —

"मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब हृदय ! इस आह्वान को !
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को।"

—आँसू (पल्लव)

'परिवर्तन' तक आते-आते कवि की अनुभूति अत्यन्त व्यापक हो गयी है। इसमें कवि की विश्व-व्यापिनी विराट अनुभूति विश्व और मानव-जीवन के अनेक पहलुओं पर टिकती है। स्वयं कवि के वैयक्तिक जीवन में महत्त्वपूर्ण घटनायें घटती हैं। पिता और बड़े भाई का देहान्त और अपने प्रेम वैफल्य मिल कर उसे विकट वास्तविकताओं से परिचय कराती हैं और कवि परिवर्तन के अटल नियमों एवं कठोरताओं पर कातर वाणी में विचार करता है। कविता की हर एक पंक्ति में अनुभूति की तीव्रता स्पष्ट लक्षित होती है। स्वीय विरहानुभूति को कवि विश्व धरातल पर कैसा उदात्तीकरण कर बैठता है।

"शून्य साँसों का विधुर वियोग
छुड़ाता अधर मधुर संयोग,
मिलन के पल केवल दो, चार,
विरह के कल्प अपार।"

—परिवर्तन (पल्लव)

कवि जीवन के सत्य के साथ जन्म-मरण के सत्य को भी स्वीकार करता है। हर्ष-विलास के साथ अवसाद, अश्रु और उच्छ्वास को भी जीवन के अटल सत्यों के रूप में ग्रहण करता है। यथा—

उसका प्रभाव कवि पर अधिक मात्रा में रहता है। कवि या कलाकार जिस विषय का अनुभव जितनी मात्रा में करता है, वह उसे काव्य में अंकित कर पाठक या दर्शक के हृदय में भी वैसी ही अनुभूति एवं विह्वलता को जगा सकता है। अपने काव्य-निर्माण के प्रथम चरण में पंत जी अत्यधिक अनुभूति-प्रवण कवि हैं। "वीणा" में उन्होंने अपनी काल्पनिक माता के प्रति अनन्य स्नेह एवं प्रेम प्रकट किया है। वहाँ बालकवि प्राकृतिक दृश्यों और उसके क्रिया-कलापों से अभिभूत हो गया है। इसके अतिरिक्त 'ग्रन्थि' एवं 'पल्लव' की 'उच्छ्वास', 'आंसू' 'परिवर्तन' आदि रचनाओं में कवि के वैयक्तिक प्रेम और विरह की अनुभूति मार्मिक रूप में व्यक्त हुई है, इसके विषय में स्वयं कवि ने लिखा है 'मेरे जीवन का समस्त मानसिक संघर्ष और अनुभूति की तीव्रता 'ग्रन्थि' और 'परिवर्तन में प्रकट हुई।''[1] वैयक्तिक प्रेम-वैफल्य के कारण 'ग्रन्थि' में कवि के प्रेम और विरह की अनुभूति अत्यधिक वेग से बह चली है। जब कवि की प्रेयसि का विवाह किसी अन्य युवक के साथ हुआ तो कवि की निराशा-पीड़ा-मिश्रित अनुभूति कितनी व्याकुलता एवं मर्मांतिकता के साथ व्यक्त हुई है-देखिए-

> 'हाय मेरे सामने ही प्रणय का
> ग्रन्थि बन्धन हो गया, वह नव कमल
> मधुप-सा हृदय लेकर किसी
> अन्य मानस का विभूषण हो गया।''
>
> —ग्रन्थि।

वियोगी विरह-व्यथा के भार से दब जाता है। वह ब्याह के दिन विजन वन में जाकर आंसू बहाता है। वह अपने को दीन-हीन एवं विधि प्रवंचित पाकर आत्म-ग्लानि में निमग्न हो जाता है और प्रेम-वैफल्य को संसार के अटल नियम के रूप में स्वीकार करता है, क्योंकि—

> "देख रोता है चकोर इधर वहाँ
> तरसता है तृषित चातक वारि को,
> यह, मधुप बिंध कर तड़पता है यहीं
> नियम है संसार का, रो हृदय, रो!"
>
> —"ग्रन्थि"।

---

१. आधुनिक कवि २- पर्यालोचन : सुमित्रानन्दन पंत, पृ० २४; सातवां संस्करण।

यहाँ कवि का हृदय कितना सरल, कितना भावुक, कितना संवेदनशील है ! "गुंजन" और "ज्योत्स्ना" के कवि की अनुभूति वैयक्तिक एवं प्राकृतिक प्रांगणों को छोड़कर मानव-जीवन की अतल गहराइयों की थाह लेने लगती है। वह हर एक मानव के हृदयगत भावनाओं, समस्याओं एवं सुख-दुख में स्वयं भी लीन होने को तत्पर है। कवि की आकांक्षा है—

> "देखूँ सब के उर की डाली—
> किसने रे क्या-क्या चुने फूल
> जग के छवि उपवन से अकूल ?
> इस में कलि, किसलय, कुसुम, शूल !"
>
> —उर की डाली (गुंजन)

कवि विश्व-वेदना में अपने मन को तपाकर उसी के साथ तादात्म्य प्राप्त करने का इच्छुक है। गहरी एवं व्यापक अनुभूति के कारण ही कवि अपने मन को जग-जीवन की ज्वाला में गलकर अकलुष, उज्ज्वल और कोमल बनने का प्रबोध देता है। "ज्योत्स्ना" का कलाकार एवं द्रष्टा भी विश्व-मानवता के प्रति अनन्य प्रेम और विश्वास दिखाता है।

काव्य-वस्तु का सम्पूर्ण मूर्ति-विधान कल्पना से ही सम्पन्न होता है। कवि अपनी कल्पना-शक्ति से ही विभिन्न दृश्यों का मूर्तीकरण कर देता है। वास्तव में काव्य का ध्येय कल्पना के सहारे 'बिम्ब' (image) या मूर्ति-भावना को प्रस्तुत करना है। कल्पना स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्राण है। कल्पना का सम्बन्ध हृदयगत अनुभूतियों से है, अतः काव्य में उसकी उपादेयता निर्विवाद है। कल्पना एवं सत्य में भी अविभाज्य सम्बन्ध है। कवि जिस सत्य को कल्पना के माध्यम से उपस्थित करता है, उसे हम शुद्ध बौद्धिक प्रक्रिया द्वारा ग्रहण नहीं कर सकते। काव्य का सत्य कल्पना का सत्य है और यह वैज्ञानिक या दार्शनिक सत्यों से सर्वथा भिन्न है। कल्पना और अन्तर्दृष्टि एक दूसरे से अविभाज्य हैं। अन्तर्दृष्टि कल्पना को क्रिया-शील बनाती है तो कल्पना अन्तर्दृष्टि को सूक्ष्मदर्शिता प्रदान करती है। अतः कल्पना एवं अन्तर्दृष्टि कवि-कर्म के प्रधान अंग हैं। विलियम ब्लेक के अनुसार 'केवल एक शक्ति कवि का निर्माण करती है; वह है कल्पना, दिव्य दृष्टि।'[1]

---

1. 'One power alone make a poet imagination, the Divine Vision'—Blake, 'Annotations to Wordsworth's' Poems in *Poetry and Prose*, p. 821.

"खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण,
अभी उत्सव औ' हास-हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छ्वास !"

—परिवर्तन (पल्लव)

कवि विश्व का सम्पूर्ण इतिहास परिवर्तन का ही इतिहास मानता है। मानव जीवन के हर्ष-विषाद, जन्म-मरण, भूत-भविष्य, बाल्य-वृद्धाप्य, मिलन-विरह, प्रभात-सन्ध्या, वसन्त-ग्रीष्म आदि 'परिवर्तन' के ही परिणाम स्वरूप हैं।

"पल्लव" के कवि में प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम एवं अनुभूति पाये जाते हैं। प्रकृति के हर एक कण-कण से उसे अनुराग है और वह उनके साथ अपनी आत्मा का अटल सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। उसके प्रत्येक क्रिया-कलाप, प्रत्येक आकृति कवि की अनुभूति एवं आनन्द के विषय बन जाते हैं। पल्लव, वीचिविलास, चाँदनी, किरण, उषा, सन्ध्या, ज्योत्स्ना, छाया, सुरभि आदि प्राकृतिक सहचरों के बीच कवि आनन्द विभोर होकर, उनका अंकन उसी मार्मिकता एवं अनुभूति से लपेट कर उसके करुणामय एवं हृदयस्पर्शी रूपों को उपस्थित करता है। भिखारियों के रूप में छाया का अंकन कवि की अनुभूति-प्रवणता का ही प्रमाण है—

"सखि ! भिखारिणी सी तुम पथ पर
फैला कर अपना अंचल,
सूखे पातों ही को पा क्या
प्रमुदित रहती हो प्रतिपल ?"

—छाया (पल्लव)

इस तरह प्रकृति के जड़ पदार्थों में भी कवि दिव्य आत्मा एवं चेतन सत्ता का दर्शन करता है और वह उनमें लय हो जाता है। प्रकृति के प्रति इतना संवेदनशील, इतना भावुक, इतना सजग एवं विह्वल, इतना अनुभूति प्रवण कवि हिन्दी में कोई दूसरा नहीं हुआ है। प्रकृति कवि की आत्मा और प्राणों में समा गयी है। अतः कवि मधुप-कुमारी से कितनी ही याचनायें करता है, यथा—

"सिखा दो ना हे मधुप कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे गान,
कुसुम के चुने कटोरों से
करा दो ना, कुछ-कुछ मधुपान।"

—मधुकरी (पल्लव)

यहाँ कवि का हृदय कितना नम्र, कितना भावुक, कितना संवेदनशील है!

'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना'' के कवि की अनुभूति वैयक्तिक एवं प्राकृतिक प्रांगणों को छोड़कर मानव-जीवन की अन्तर आकांक्षाओं की थाह लेने लगती है। वह हर एक मानव के हृदयगत भावनाओं, आकांक्षाओं एव सुख-दुख मे स्वयं भी लीन होने को तत्पर है। कवि की आकांक्षा है—

> 'देखूँ सब के उर की डाली—
> किसने रे क्या-क्या चुने फूल
> जग के छवि उपवन से अकूल ?
> इस मे कलि किसलय कुसुम शूल !''
>
> —उर की डाली (गुंजन)

कवि विश्व-वेदना मे अपने मन को तपाकर उसी के साथ तादात्म्य प्राप्त करने का इच्छुक है। गहरी एव व्यापक अनुभूति के कारण ही कवि अपने मन को जग-जीवन की ज्वाला मे तपकर अकलुष, उज्ज्वल और कोमल बनने का प्रबोध देता है। ''ज्योत्स्ना'' का कलाकार एव द्रष्टा भी विश्व-मानवता के प्रति अनन्य प्रेम और विश्वास दिखाता है।

काव्य-वस्तु का सम्पूर्ण मूर्ति-विधान कल्पना से ही सम्पन्न होता है। कवि अपनी कल्पना-शक्ति से ही विभिन्न दृश्यो का मूर्तीकरण कर देता है। वास्तव मे काव्य का ध्येय कल्पना के सहारे 'बिम्ब' (image) या मूर्ति-भावना को प्रस्तुत करना है। कल्पना स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्राण है। कल्पना का सम्बन्ध हृदयगत अनुभूतियो से है, अत काव्य मे उसकी उपादेयता निर्विवाद है। कल्पना एव सत्य मे भी अविभाज्य सम्बन्ध है। कवि जिस सत्य को कल्पना के माध्यम से उपस्थित करता है, उसे हम शुद्ध बौद्धिक प्रक्रिया द्वारा ग्रहण नहीं कर सकते। काव्य का सत्य कल्पना का सत्य है और यह वैज्ञानिक या दार्शनिक सत्यों से सर्वथा भिन्न है। कल्पना और अन्तर्दृष्टि एक दूसरे से अविभाज्य हैं। अन्तर्दृष्टि कल्पना को क्रियाशील बनाती है तो कल्पना अन्तर्दृष्टि को सूक्ष्मग्राहिता प्रदान करती है। अत. कल्पना एव अन्तर्दृष्टि कवि-कर्म के प्रधान अग है। कविवर ब्लेक के अनुसार ''केवल एक शक्ति कवि का निर्माण करती है। वह है कल्पना, दिव्य दृष्टि।''[1]

---

1. 'One power alone make a poet : imagination, the Divine Vision'—Blake, 'Annotations to Wordsworth's' Poems in *Poetry and Prose*, p. 821,

कविवर शेली के अनुसार "सामान्य अर्थ में, कल्पना की अभिव्यक्ति ही काव्य है[1]
महाकवि शेक्सपियर के मतानुसार कवि-कर्म की मूल प्रक्रिया कल्पना की अभिव्
में ही निहित है । यथा—

आवर्त में वह भ्रमण करते देखते हैं नेत्र कवि के,
स्वर्ग से धरातल तक, धरातल से स्वर्ग तक,
जो कल्पना की शक्ति से साकार होकर रूप पाते वस्तुएँ अज्ञात !
उन्हें कवि की लेखनी आकार देती
और देती शून्य को फिर एक परिचित नीड़
को एक परिचित नाम ।"[2]

कल्पना आनन्द की सृष्टि करती है और स्वयं कल्पना आनन्द-स्वरूप है। कल्पना और सत्य के बीच अटल सम्बन्ध होने के कारण उसमें हृदय को स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता है । कवि कल्पना-शक्ति के बल से जगत या जीवन की किसी मार्मिक दशा, सुन्दर रूप का मूर्त-रूप अंकित कर देता है तो पाठक के मन में कोई न कोई भाव जग ही जाता है । कवि अपनी रुचि के अनुसार कुछ रूपों या व्यापारों को चुनकर, उनको मूर्तरूप में व्यक्त करता है । कल्पना का प्रयोग प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों को प्रस्तुत करने के निमित्त किया जाता है ।

पंत के काव्य में कल्पना को अत्यधिक स्थान प्राप्त हुआ है । कवि की कल्पना शक्ति इतनी विकसित है कि प्रत्येक रूप या व्यापार उनकी आँखों के सम्मुख भावना बनकर आता है । कहीं कवि की सूक्ष्म कल्पना प्रत्येक वस्तु के तह तक प जाती है तो कहीं-कहीं उनकी विरह कल्पना सम्पूर्ण विश्व को कण-कण में देख तदनुरूप मूर्तीकरण कर देती है । "ग्रंथि", "पल्लव", "गुंजन" के रचनाकाल में क

1. 'Poetry, in a general sense, may be defined to be the expressio of the imagination.—P. B. Shelley–Poetry and Criticism of the Romantic Movement in '*A Defence of Poetry*' p. 503.
2. 'The poet's eye, in a fine frenzy rolling,
Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven;
And, as imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet's pen.
Turns them to shapes, and gives to airy nothing.
A local habitation and a name.' William Shakespeare From
'*A Midsummer Night's Dream*' Act V, Scene I.

की कल्पना इतनी सशक्त हो गयी है कि वह सभी भावों को कल्पना के पाशों में बाँध देता है। "ग्रन्थि" की नायिका की यौवनजन्य चंचलता एवं तिरछे नयनों की आकुलता व्यक्त करने के लिए कवि अपनी उर्वर कल्पना के सहारे एक प्राकृतिक दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित करता है —

> "कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
> पंख फड़काना नहीं थे जानते,
> चपल चोखी चोट कर अब पंख की
> वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को"
>
> —ग्रन्थि

प्रभाव-साम्य के कारण यह दृश्य अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। कवि अपनी सजीव कल्पना से आशा का मूर्तीकरण कर, उसे एक रूपसि की नैसर्गिक सुषमा से विभूषित कर देता है। उषा के समय में प्रफुल्ल-सुमन-शोभित उद्यान में सुरभिवेणी में भ्रमर-पुष्पों को गूँथ कर, पराग की साड़ी पहनकर, तुहिन कणों के मुकुट मुकुलों को पहनाकर, उनके हृदय सम्पुटों को खोलने वाली आशा-सुन्दरी की सौम्य कोमल मूर्ति किसके नयनों के सम्मुख न थिरक उठेगा ?

> "देवि ! ऊषा के खिले उद्यान में
> सुरभि वेणी में भ्रमर को गूँथकर,
> रेणु की साड़ी पहन, कण तुहिन का
> मुकुट रख, तुम खोलती हो मुकुल को।"
>
> —ग्रन्थि।

हाय ! मुझे भी त्याग गया वह
और ! नग का निष्ठुर कोई।"

—छाया (पल्लव)

इस प्रकार कवि हमारे चिर परिचित वस्तुमय दृश्यों को सम्मुख रखकर हमारी सूक्ष्म कल्पना को भी जागरित कर हृदय में रस-संचार कर देता है। "बादल" में कवि की बहुरंगी कल्पना सूक्ष्म एवं विराट हो गयी है। परियों के बच्चों के समान बादलों का सुन्दर श्वेत पंखों को पसार कर, चन्द्रमा के सुकुमार कर पकड़ कर हर्षोल्लास के साथ ज्योत्स्ना में तैरने का दृश्य अत्यन्त चित्ताकर्षक है—

"फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार,
समुद तैरते शुचि ज्योत्स्ना में
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार"

—बादल (पल्लव)

कभी बादल उदयाचल से उड़कर अम्बर में चलते वाले बाल-हंस (तरणिबिम्ब) के विशाल स्वर्ण-पंखों के समान फरफराते अनिल से बातें करते हैं तो कभी बादलों के भूतों का सा भयंकर आकार धारण कर, अट्टहास करना सुनकर सारा संसार थर्रा उठता है। कवि कहीं-कहीं हर एक पंक्ति में दो-दो चित्रों को कल्पना के बल पर साक्षात्कार करा देता है। देखिये--

"हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि वसन, वसुधा के मूल,
नभ में अवनि, अवनि में अम्बर,
सलिल भस्म, मारुत के फूल।"

—बादल (पल्लव)

कल्पना के आधार पर खड़े किये जाने पर भी बादल के ये विभिन्न रूप कितने सत्य हैं।

"परिवर्तन" तक आते-आते कवि की कल्पना अत्यधिक विकसित एवं विराट हो गयी है। "परिवर्तन" की चिरन्तन प्रक्रिया को दृष्टि में रखकर कवि विश्व-धरातल पर घटित होने वाले संश्लिष्ट अप्रस्तुतों को हमारे सम्मुख लाता है। कहीं परिवर्तन को जग के विक्षत वक्षस्थल पर लक्ष-अलक्षित चरण चिह्न छोड़ते हुए भयंकर स्फीत फुत्कारों से विश्व को घुमाने वाले सहस्रफनी वासुकि के रूप में चित्रित

करता है जो कहीं उसे सम्पूर्ण विश्व को अपनी दुर्दान्त सेना के बल से पदाक्रान्त एवं पद-दलित करने वाले नृशंस सम्राट के रूप में अंकित करता है। कहीं कहीं कवि अपनी उर्वर कल्पना के बल पर अधिक गत्यात्मक विराट चित्रों को भी उपस्थित करता है। "परिवर्तन" रूपी विराट मानव का एक मात्र रोमांच ही दिग्भूकम्पन है; और आकाश के नक्षत्र भीत पक्षिशावकों से गिर पड़ते हैं, आलोडित महाम्बुधि अपने शत-शत फेनोन्नत तरंगफनों को तान कर, मुग्ध भुजंग-सा परिवर्तन रूपी सँपेरे के इंगित पर नर्तन करता है। दूसरी ओर वितान नीलाम्बर दिग्विजय में बद्ध होकर वायु के दुर्दान्त आघातों से आहत होकर कातर एवं गम्भीर गर्जन करने वाले मत्तगज के समान है। कवि की ओजपूर्ण वाणी ने यहाँ सम्पूर्ण दृश्य को साकार कर दिया है। देखिए —

"अरे, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भूकम्पन,
गिर गिर पड़ते भीत पक्षि-पोतों-से उडुगन!
आलोडित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत-शत फन
मुग्ध भुजंगम-सा इंगित पर करता नर्तन?
दिक् पिंजर में बद्ध, गजाधिप सा विनतानन,
वाताहत हो गगन आर्त करता गुरु गर्जन।"

—परिवर्तन (पल्लव)

इस कविता में अनन्त कल्पना प्रसूत चित्र भरे पड़े हैं। "गुंजन" की 'भावी पत्नी के प्रति', 'चाँदनी', 'अप्सरा' आदि कविताओं में कवि की कोमल कल्पना को आकार मिलता है। कवि की कल्पना में लिपटी हुई भावी पत्नी का स्वरूप अत्यन्त भव्य उतरा है। ऐसे तो सम्पूर्ण कविता अनुमान एवं कल्पना के बल पर अवतीर्ण हुई है। प्रथम मिलन के अवसर पर नायिका का काल्पनिक चित्र कितना सजीव एवं प्रभावोत्पादक है। नायिका का मृदुल हृदय कम्पायमान है, गात में पुलकावलि जग जाती है, वह *शंकावश ज्योत्स्ना-सी मौन धारण की हुई है, पग आगे नहीं बढ़ रहे* हैं, नयनों पर पलकें गिर रही है और वह धरती की ओर देख रही है। वह प्रिय के निकट जाने की इच्छा रखती हुई भी लज्जावश लाजवन्ती-सी म्लान होती जा रही है और उसके हृदय में माधुर्य भरा हुआ है—कवि के ही शब्दों में —

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात।
विकम्पित मृदु उर, पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप
जड़ित पद, नमित पलक दृग पात
पास जब आ न सकोगी, प्राण।

मधुरता में भी भरी अजान;
लाज की छुई मुई सी म्लान
प्रिये, प्राणों की प्राण"
—भावी पत्नी के प्रति (गुंजन)

'चाँदनी' में कवि की कल्पना के सूक्ष्म एवं विराट स्वरूपों का दर्शन होता है। कवि कभी-कभी चाँदनी को शान्त मुद्रा में हथेली पर अपने चन्द्र-वदन रखकर 'नीले नभ के शतदल पर' बैठी हुई 'शारद हासिनि' के रूप में देखता है तो कभी उसे 'बेला की फूली बन' के रूप में कल्पना करता है जिसमें न नाल है, न दल, कुड्मल हैं, वह केवल चिर निर्मल विकास एवं प्रकाश मात्र में और जिसमें दशों दिशि-दल डूबे रहते हैं। कभी कवि उसकी कल्पना एक लघु परिमल के घन के रूप में करता है, जो अनिल में लीन होकर अविकल रहता है और वह सुख से उमड़ता हुआ सागर की भाँति है जिसमें सम्पूर्ण विश्व-पुलिन डूब जाते हैं। वह उस मुकुल के समान है, जो अपने दिवस के कांति-दलों को मूँद कर शय्या पर लेटे हुए स्वप्न जगत में लीन होता है और उस हृदय में विश्व-मधुप अपने जीवन की गुंजार को नीरवता में परिणत कर, सो रहा है—

"वह स्वप्निल शयन मुकुल सी
हैं मुँदे दिवस के द्युति दल,
उर में सोया जग का अलि
नीरव जीवन गुंजन कल"
—चाँदनी (गुंजन)

कवि-कल्पना में वह 'नभ के विशाल करतल पर' एक जल-बिन्दु के समान दिखाई देती है—

"वह एक बूँद जीवन की
नभ के विशाल करतल पर!"
—चाँदनी (गुंजन)

उपर्युक्त दोनों चित्रों में कवि की कल्पना ने विराट् प्रस्तुतों के लिए सूक्ष्म एवं लघु अप्रस्तुतों को चुन लिया है।

अप्सरा भी 'निखिल कल्पनामयि' है। वह तो कहीं मोहिनि, कहीं 'कुहकिनि' बन 'चित्र विचित्र' रूपों में आती है। वह आकाश-गंगा में जल-विहार करती है। उसके कोमल बाहु-मृणालों को पकड़ कर चन्द्र-बिम्ब के प्रतिबिम्बों के असंख्य रजत-मरालों का तैरना, श्वेत फेन-रूपों का नील नभ में बिखर कर लघु उडुगन बन जाना

और अप्सरा की देह-द्युति लहरों में प्रतिबिम्बित होकर कमलों की माला की भाँति दिखाई देना आदि कवि के सूक्ष्म काल्पनिक सौन्दर्य को ही स्पष्ट करता है—

> 'स्वर्गंगा में जल विहार तुम करती बाहु मृणाल !
> पकड़ पैरते इन्दु बिम्ब के शत शत रजत मराल !
> उड़ उड़ नभ के शुभ्र फेन कण बन जाते उडु बाल,
> मज्जन देह द्युति चल लहरों में बिम्बित सरसिज मात।"
>
> —अप्सरा (गुंजन)

कहीं कहीं कवि की कल्पना अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है। वह कल्पना करता है कि अप्सरा "तुहिन बिन्दु में इन्द्र रश्मि" के समान चुपचाप सोती है, मुकुल शय्या पर सोकर स्वप्न में अपनी ही निरुपम छवि देखती है, तभी वह 'जलजों में निद्रित मधुपों से मौन वार्तालाप करती है।'

'ज्योत्स्ना' के पात्र नैसर्गिक होते हुए भी उनके व्यक्तित्व कवि-कल्पना प्रसूत हैं। अपनी नवनवोन्मेषिणी कल्पना-शक्ति के बल पर पंत जी विश्व के महान् कवियों के समकक्ष ठहरते हैं।

अपने सौन्दर्य-बोध के कारण मानव पशु पक्षियों से पृथक् माना जाता है। *सौन्दर्य-भावना मानव-मन तथा जीवन का एक अभिन्न अंग एवं गुण है।* मानस के चैतन्य एवं भावात्मक हृदय की तदाकार-परिणति ही सौन्दर्य की अनुभूति है। मानव सौन्दर्य की ओर आकर्षित होता है। सौन्दर्य वही उपकरण है जिसके अस्तित्व के कारण कोई वस्तु, क्रिया या दृश्य सुन्दर प्रतीत हो। इसके ठीक विपरीत जिन वस्तुओं, क्रियाओं और दृश्यों के प्रति मानव में विकर्षण उत्पन्न हो जाता है, उन्हें हम असुन्दर कहते हैं। सौन्दर्य-भावना में देश एवं संस्कृति के पार्थक्य के कारण कुछ वैभिन्य दिखाई पड़ने पर भी मानवता के सामान्य धरातल पर पहुँची हुई विश्व की सब सभ्य जातियों में सौन्दर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हैं। संस्कृतियों एवं देशों की विभिन्नता में भी दिखाई देने वाली सौन्दर्य मूलक एकता ही चिरन्तन मानव की एकता की परिचायिका है। किसी वस्तु के सौन्दर्य पर मानव मुग्ध हो जाता है तो वह आनन्द का अनुभव करने लगता है। सौन्दर्य का प्रभाव उसके समस्त अन्तरतम में व्याप्त हो जाता है। कविवर कीट्स ने इसी तथ्य की ओर संकेत किया है—

"सौन्दर्य की वस्तु देती आनन्द चिरन्तन।"[1]

---

1. 'A Thing of beauty is a joy for ever'—Keats : *Endymion.*

तदनन्तर कीट्स ने सौन्दर्य और सत्य को एकाकार कर दोनों की अभिन्नता का भी परिचय दिया—

> "सौन्दर्य ही सत्य है औ' सत्य ही सौन्दर्य है,
> धरातल पर ज्ञात सब को औ' सभी को जानने के योग्य है।"[1]

कलाकार या कवि में यह सौन्दर्यानुभूति अधिक मात्रा में रहती है। वह सौन्दर्य का अनुभव कर हर्षोन्माद में डूब जाता है और उसी सौन्दर्य के साथ तज्जन्य आनन्द को भी कला या काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। दर्शक या पाठक भी उसी सौन्दर्य को ग्रहण कर आनन्द विभोर हो उठता है। अतः सौन्दर्य कवि कर्म एवं काव्य का एक अभिन्न अंग माना गया है। "रसगंगाधर" में तो यहाँ तक कहा गया है कि रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है। पाश्चात्य कला-समीक्षक लेसिंग के अनुसार भी काव्य और कलायें आत्मा के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती हैं। अतः आत्म-सौन्दर्य समन्वित अभिव्यंजना ही काव्य है। कवि या कलाकार की आत्मा में सौन्दर्य का अनुभव एवं ग्रहण करने की शक्ति जितनी अधिक रहती है, वह उसी मात्रा में सौन्दर्योपासक कलाकार माना जाता है। कवि या कलाकार सौन्दर्य का साक्षात्कार केवल मनुष्य में ही नहीं करता है अपितु "पल्लव-गुम्फित पुष्पहास में, पक्षियों के पक्षजाल में, सिन्दूराभ सान्ध्य दिगंचल के हिरण्य-मेखला-मण्डित घन खण्ड में, तुषारावृत्त तुंग गिरि-शिखर में, चन्द्रकिरण से झलझलाते निर्झर में और न जाने कितनी वस्तुओं में वह सौन्दर्य की झलक पाता है।"[2] व्यावहारिक सुगमता के निमित्त सौन्दर्य के निम्नलिखित विभाग करेंगे—प्राकृतिक सौन्दर्य, नारी-सौन्दर्य, मानसिक-सौन्दर्य, कर्म-सौन्दर्य, अभिव्यंजना का सौन्दर्य।

पंत जी मूलतः सौन्दर्य के ही कवि हैं। उनके काव्य में नानाविध सौन्दर्य-रूपों का साक्षात्कार होता है। प्रकृति-सौन्दर्य की अपार निधि उनकी सभी रचनाओं में बिखरी पड़ी है। प्रकृति में भी कवि कोमल एवं भव्य रूपों की ओर अधिक आकृष्ट हुआ है। कवि पर्वत-प्रदेश के निर्झरों के सौन्दर्य का अंकन करते हुए कहता है कि गिरि के गौरव-गान गाते हुए प्रवाह के मद से नस-नस को उत्तेजित करते हुए, मोती की सुन्दर लड़ियों के समान झाग-भरे निर्झर पर्वत से झर रहे हैं—

---

1. 'Beauty *is* truth, truth beauty that *is* all,
   Ye know on earth and all ye need to know—*Keats : Ode on a Grecian Urn.*
2. चिंतामणि-पहला भाग, "कविता क्या है" से उद्धृत, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १६६।

"गिरि का गौरव गाकर झर्-झर्
मद से नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुन्दर
झरते हैं झाग भरे निर्झर।"

—उच्छ्वास (पल्लव)

मोती की लड़ियों के समान प्रतीत होने वाले झाग भरे निर्झरों का स्वरूप कितना सौन्दर्य-मंडित है। वास्तव में उनमें प्रकृति-सौन्दर्य ग्रहण करने की शक्ति अपरिमेय है। सौन्दर्य-भावना को रूप देने में कवि की कल्पना अधिक सहायक हुई है। व्योम-विपिन में वसन्त के समान जब पल्लवित प्रभात खिल उठता है तब वायु के प्रवाह में बादल तमाल तरु के काले पत्तों की भाँति गिरकर बहते हैं। इस दृश्य का सौन्दर्य कितना वर्णनातीत है।

'व्योम विपिन में जब वसन्त सा
खिलता नव पल्लवित प्रभात,
बहते हम तब अनिल स्रोत में
गिर तमाल तम के से पात"

—बादल (पल्लव)

उदयाचल को छोड़कर अम्बर में उड़ने वाला तरणि-बिम्ब रूपी बालहंस के स्वर्ण पंख बनकर बादलों का पवन से वार्तालाप करना कितना सौन्दर्य-समन्वित दृश्य है—

"उदयाचल से बाल हंस फिर
उड़ता अम्बर में अवदात,
फैल स्वर्ण पंखों से हम भी,
करते द्रुत मारुत से बात।"

—बादल (पल्लव)

अपने मौन-नेत्रों को चारों ओर घुमाती हुई चपल अचल के छोर पकड़कर सुन्दर रूप भरे पलों को पसार कर किशोर परी की भाँति थिरकने वाली मधु लहरों का विलास अनन्य सौन्दर्य की सृष्टि करता है—

"चला मौन दृग चारों ओर
गह गह चपल अचल छोर,
रुचिर रुपहरे पंख पसार
अरी वारि की परी किशोर।"

—वीचि विलास (पल्लव)

सन्ध्या के समय गंगा के निर्मल जल में किरणों के रक्तोत्पल (तरणि-बिम्ब) का मुरझाकर अपने मृदु संपुटों को मूँद चुनना, लहरों पर की सुन्दर स्वर्ण-रेखाओं का, शिशिर के डर से अरुणाई के भाग जाने के पश्चात् अधरों के रंग के समान नील पड़ जाना कितना सौन्दर्य चारों ओर बिखेर देते हैं—

"गंगा के चल जल मे निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूँद चुका अपने मृदु दल !
लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर पड़ गयी नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर !
— एक तारा (गुंजन)

चाँदनी रात मे गंगा के निर्मल एवं निश्चल जल के दर्पण मे रजत-पुलिनों का प्रतिबिंबित होकर क्षण भर के लिए दुहरे ऊँचे लगना, चाँदी के साँपों के समान जल मे चलकर सरल तरल रेखाओं मे खिचकर रलमल इन्दु-रश्मियों का थिरकना, उर्मि-लतिकाओं मे झिलमिल हिलने वाले असंख्य शशि और उडगणों का फूलों के समान खिलकर जल के फेनिल के साथ फैल जाना, प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य के प्रति कवि के आकर्षण के ज्वलन्त दृष्टान्त हैं—

"निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिम्बित हो रजत पुलिन निर्झर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर !"
"चाँदी के साँपों सी रलमल, नाँचती रश्मियाँ जल मे चल,
रेखाओं सी खिच तरल सरल !
लहरों की लतिकाओं मे खिल, सौ-सौ शशि, सौ-सौ उडु झिलमिल
फैले फूले जल मे फेनिल !"
— नौका विहार (गुंजन)

ऐसे तो प्राकृतिक सौन्दर्य की झलक कवि की हर एक कविता मे हमे दिखायी देगी, किन्तु सभी की विवेचना यहाँ संभव नहीं है।

पंत जी ने नारी के शारीरिक सौन्दर्य का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। 'ग्रन्थि' की नायिका के कपोलों का सौन्दर्य अनूठा है। लज्जा की मादक सुरा के समान, नवीन गुलाब के समान, लालिमा का नायिका के कपोलों पर छा जाना और उसके मंदहास की मुद्रा मे कपोलों के गढ़ों से सौन्दर्य की बाढ़ छलककर अरुण रश्मियों को अपने में विकीर्ण करने वाली सीप की भाँति प्रतीत होना क्या कम रमणीय है ?—

"लाज की मादक सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से

"अरुण अधरों की पल्लव प्रात,
मोतियों सा हिलता हिम हास,
इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात
बाल विद्युत का पावस लास
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले अंगों का मधुमास
तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिये, प्राणों की प्राण!"

—भावी पत्नी के प्रति (गुंजन)

वि की 'अप्सरा' का सौन्दर्य भी वर्णनातीत एवं कल्पनातीत है। इसके अतिरिक्त वि की 'छाया' तथा, चाँदनी के रूप में अंकित नारी मूर्तियों का सौन्दर्य भी सौन्दर्य-मण्डित है।

कवि मानसिक सौन्दर्य की ओर भी अधिक आकर्षित हुआ है। 'वीणा' की बालिका की भोली उद्गारों में स्वयं कवि के मानसिक सौन्दर्य का आभास मिलता है। उन उद्गारों की कोमलता, सरलता, निर्मलता, नैसर्गिकता ही उनके मानसिक सौन्दर्य को स्पष्ट करती हैं। 'उच्छ्वास' में कवि का यह कहना "वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल घर" भोली बालिका के मानसिक सौन्दर्य को ही विदित करता है। 'आँसू' में कवि बालिका के भौतिक से भी कहीं अधिक मानसिक सौन्दर्य का ही वर्णन करता है। देखिये उसका मानसिक सौन्दर्य—

"कपोलों में उर के मृदु भाव
श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव
सरल संकेतों में संकोच,
मृदुल अधरों में मधुर दुराव!
उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,

प्रकृति का अटूट सम्बन्ध उनकी रचनाओं में सर्वत्र मिलता है। जन्म-मरण के विषय में कवि ने "परिवर्तन" में प्रकाश डाला है। वे जन्म-मरण की अविराम प्रक्रियाओं को देखकर यों कहते हैं—

"खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण"
—परिवर्तन (पल्लव)

जन्म-मरण के पुलिनों के बीच से मानव की जीवन-धारा प्रवाहित होती है—

"चिर जन्म-मरण के आर पार
शाश्वत जीवन नौका विहार"
—नौका विहार (गुंजन)

कवि मानव-जीवन में सुख और दुख के सन्तुलन के समर्थक हैं, क्योंकि—

"जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित है अति सुख से।"
—सुख-दुख (गुंजन)

वह सुख-दुख का मधुर मिलन चाहता है—

"सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरण।"
—सुख-दुख (गुंजन)

कवि का यह सन्तुलित दृष्टिकोण और भी गहरा हो जाता है। वह सुख-दुख की अचिरता एवं क्षणभंगुरता का अनुभव करता है। अतः इन दोनों से भी अधिक प्राधान्य मानव-जीवन को देते हैं—

"अस्थिर है जग का सुख-दुख
जीवन ही नित्य चिरन्तन।"
—अवलम्बन (गुंजन)

नारी के विषय में कवि का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। प्रसाद जी की भाँति वे भी पुरुष और नारी को मानव-जीवन के दो पहिये के रूप में स्वीकार करते हैं। नारी के बाह्य एवं अभ्यान्तर सौन्दर्य को कवि ने अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। कवि नारी की दिव्य-मूर्ति में कोमलता, कमनीयता, माधुर्य एवं सौन्दर्य का दर्शन करता है—

'तुम्हारे गुण हैं मेरे गान,
मृदुल दुर्बलता ध्यान।
तुम्हारी पावनता अभिमान
शक्ति पूजन, सम्मान!
—नारी रूप (पल्लव)

कवि ने प्रकृति की रूपरेखा में भी नारी-मूर्तियों का साक्षात्कार किया है। "छाया", "गंगा", "चाँदनी", "भावी पत्नी", "अप्सरा" आदि के नारी चित्रों में सौन्दर्य की भिन्नता है, रूप की विशदता है। कवि ने स्वयं प्रकृति को अपने से अलग अस्तित्व रखने वाली नारी के रूप में देखा है।

नारी प्रणय का एक मात्र आधार होते हुए भी उसका प्रेम ऐन्द्रिय (sensuous) नहीं, वरन् आत्म-सौन्दर्य-समन्वित है। वह कवि के अनुसार "आत्म निर्मलता में तल्लीन चारु-चित्रा-सी, आभासीन" है। कवि ने अधिकतर नारी के अतीन्द्रिय एवं भावात्मक सौन्दर्य का ही अंकन किया है। जैसे—

> "तारिका सी तुम दिव्याकार
> चन्द्रिका की झंकार!
> प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार,
> अप्सरी-सी लघुभार,
> स्वर्ग से उतरी क्या सोद्गार
> प्रणय हंसिनि सुकुमार?"

—गुंजन

पन्त-काव्य में हास्य जैसे रस को छोड़ कर अन्य सभी रसों का सुन्दर परिपाक मिलता है। फिर भी पन्त जी मूलतः शृंगार, करुण एवं शान्तरस के कवि हैं। उनके प्रारम्भिक काव्य में शृंगार और करुण रसों की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक हुई है। यथा स्थान भयानक, रौद्र और वीर रस भी मिल जाते हैं, किन्तु कम मात्रा में। शृंगार के प्रसंग के आने पर हरएक कवि इस रस का संचार करता है, किन्तु शृंगारी कवि किसी दृश्य या किसी प्रसंग में भी शृंगार रस की सामग्री जुटा ही लेता है। प्रकृति में भी नारी का साक्षात्कार करने वाले पन्त जी मूलतः शृंगार के कवि हैं। लहरों के घूँघट से अपने तिर्यक मुख दिखलाने वाले चन्द्र-बिम्ब को मुग्धा के रूप में देखना, तन्वंगी गंगा के कृश कोमल शरीर को आलिंगन करने के लिए दूरस्थ तीर का अपने दोनों हाथों का पसारना, कवि की इसी मूल प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं। कवि के शब्दों में—

> "लहरों के घूँघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख
> दिखलाता, मुग्धा सा रुक रुक!"
> "दो बाँहों से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर,
> आलिंगन करने को अधीर।"

—नौका-विहार : गुंजन

शृंगार रस के दोनों पक्षों—मिलन और विरह—का चित्रण 'ग्रन्थि' में हुआ है। 'प्रथम मिलन' कविता में मिलन का, 'उच्छ्वास' तथा 'आँसू' में विरह का मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है।

करुण रस का परिपाक भी उनके काव्य में अत्यन्त सुन्दर हुआ है। इस 'ग्रन्थि', 'उच्छ्वास', 'आँसू', 'छाया', 'परिवर्तन' आदि कविताओं में करुण रस छलक उठा है। 'ग्रन्थि' के विषय में स्वयं कवि ने कहा है—

"गुंजित उर की करुण प्रतिध्वनि
मधुर ग्रन्थि में, ध्वनि मय गुम्फित।"

—आत्मिका : चिदम्बरा

छाया को भिखारिणी, दमयन्ती, द्रौपदी आदि करुणा-पात्र नारी-रूपों में अंकित कर, कवि ने करुण रस का संचार कर दिया है। 'परिवर्तन' कविता कितने ही हृदय-विदारक चित्रों से भरी पड़ी है। प्रभात समय में ही यह माता बनी थी, कुछ ही वर्षों के उपरान्त मृत्यु ने शिशु को छीन लिया है तो उस हतभागिनी पद्मिनी की दशा पर किसको दया नहीं आती!

"छिन गया हाय! गोद का बाल,
गड़ी है बिना बाल की नाल।"

—परिवर्तन : पल्लव

एक लज्जाशील नव वधू के पति के निधन के पश्चात उसकी करुण दशा को कवि के शब्द-चित्रों में देखिये—

"अभी तो मुकुट बँधा था माथ,
हुए कल ही हलदी के हाथ;
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुम्बन शून्य कपोल,
हाय! रुक गया यहीं संसार,
बना सिंदूर आज अंगार;
वातहत लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार!!"

—परिवर्तन : पल्लव

महाकार भूतों के समान बादलों का गरजकर अट्टहास करने से, "परिवर्तन" के सहस्र फन वासुकि के स्फीत फूत्कारों से अनायास ही भयानक रस की सृष्टि होती है तो परिवर्तन रूपी विश्वजित सम्राट की अजेय सेनावाहिनी के वर्णन में वीर एव

रौद्र रसों का एक साथ संचार हो जाता है। शान्त रस तो उनके काव्य में सर्वत्र मिलता है।

पन्त के व्यक्तित्व एवं काव्य में एक आश्चर्यजनक समानता मिलती है। उनके जीवन एवं काव्य के राग-विराग के प्रमुख तत्वों का निरूपण नहीं किया जाय तो उनके भाव-जगत की विवेचना अधूरी ही रह जायगी। उनके भाव जगत का निर्माण उनके इन दोनों तत्त्वों पर आधारित है। उनके इस द्वन्द्व मूलक व्यक्तित्व के निर्माण का अधिक श्रेय उनकी जन्मभूमि कौसानी को है। जहाँ कौसानी एक ओर अनंत सौन्दर्य-विभूषित होकर अप्सरा-सी लगती है, वहाँ दूसरी ओर पावनता एवं साधना से तपस्विनी-सी प्रतीत होती है। इस प्रकार कौसानी के अंचल में पालित एवं पोषित मातृहीन शिशु पन्त के व्यक्तित्व में कौसानी की राग विरागमयी वृत्तियाँ सहज रूप में समा गयी हैं। अतः पन्त जी के जीवन, व्यक्तित्व तथा काव्य में अधिक साम्य होने के कारण उनके काव्य में वे सहज रूप से आ गयी। उनका सम्पूर्ण जीवन राग और विराग का संघर्ष है। इस राग-विरागपूर्ण जीवन-धारा में कवि के तन, मन, प्राण तरंगों की भाँति लहराते हैं। ये राग और विरागी तत्व वास्तव में इनके काव्य एवं जीवन के मूल स्वर हैं। इन दोनों वृत्तियों के बीच द्वन्द्व युद्ध भी चला, दोनों ने एक दूसरे को दबाने का प्रयत्न भी किया, एक दूसरे के स्नेहिल पाश में भी बँध गये। एक ओर राग की वृत्ति ने रूप-रंग-भरी संसार की ओर उन्हें आकृष्ट कर कवि बनाया है तो दूसरी ओर विराग की वृत्ति ने उन्हें संसार की मोह माया से दूर खींच कर सन्त भी बनाया है। पन्त जी के अनन्य मित्र एवं प्रसिद्ध कवि डा० बच्चन कवि की इस द्वन्द्वमूलक व्यक्तित्व पर यों प्रकाश डालते हैं, "कवि पन्त के पीछे एक दिव्य-संत, और सन्त पन्त के पीछे एक सरस कवि बैठा हुआ है। इसी संयोग ने उनकी सरसता को उच्छृंखल और उनकी साधना को शुष्क होने से बचा लिया है।"[1]

१८ वर्ष का बाल-कवि "वीणा" में जहाँ एक ओर प्रेम विभोर होकर यों कहता है—

> "नव वसन्त ऋतु में आओ
> नव कलियों को विकसाओ
> प्रेयसि कविते ! निरुपमिते !"

—वीणा

---

१. "पल्लविनी" का "एक दृष्टिकोण" से—डा० हरिवंशराय बच्चन, पृ० २६, तृतीय संस्करण।

यहाँ दूसरी ओर उनका संत बोल उठता है—

"माया सागर मे डूबों का
सोख सोख रति रस हर दूँ।
जग की मोह तृषा को छल,
सूखे मरु से माँ! शिक्षा का
स्रोत छिपा सम्मुख धर दूँ।
× × ×
"यह जग का सुख जग को दे दे
माँ! अपने को क्या सुख, क्या दुख ?"

—वीणा

१८ वर्ष के बालक के मुँह से ऐसी बातें सुनकर कौन आश्चर्य चकित नही होगा? "ग्रन्थि" मे उनके कवि ने संत को कुचल दिया है। फलतः उसमें कवि की काव्य-सरसता सर्वत्र मिलती है। "पल्लव" में कवि का रूप ही अधिक मुखर है, किन्तु "परिवर्तन" कविता में पंत और संत में सुन्दर सामन्जस्य मिलता है। "गुंजन" में कवि और संत के बीच संघर्ष एवं राग-विराग की वृत्तियो मे मंथन दृष्टिगोचर होता है। स्वयं कवि कहते हैं—

"ये मानस मंथन के दिन थे,
भरा सुनहली स्मृतियों से मन।"

—आत्मिका : चिदम्बरा

उनके कवि और संत, रागी और विरागी का स्पष्ट प्रतीक "गुंजन" है। उसमें "भावी पत्नी के प्रति", "अप्सरा" आदि कवितायें कवि के हृदय से उतरी हैं तो "प्रार्थना", "तप रे मधुर मधुर मन" आदि कवितायें संत के मस्तिष्क की उपज हैं। कुछ रचनायें ऐसी भी हैं जिनको कवि ने आरम्भ किया है और दार्शनिक संत ने समाप्त किया है—जैसे 'नौका-विहार" और "एकतारा"। नौका-विहार का आरम्भ "शान्त स्निग्ध ज्योत्स्ना" उज्जवल के साथ कवि ने किया है तो दार्शनिक संत ने यों समाप्त किया है—

"मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व दान"

—नौका विहार : गुंजन

"एक तारा" का भी आरम्भ नीरव सन्ध्या के प्रशान्त वातावरण में कवि ने किया है और अन्त तक आते-आते दार्शनिक संत ने कवि को दबा दिया है—

"[illegible] [illegible] [illegible] का [illegible], वह [illegible] कुछ [illegible] में घन,
[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]!"

—एकतारा : गुंजन

इसमें [illegible] कवि ने [illegible] के प्रति जो विद्रोह खड़ा किया है, उसका उन्मन [illegible] इन पंक्तियों में सुन सकते हैं—

"जीवन निर्झर रे स्वर्ण विकल
[illegible] का [illegible], दुस्सह है इसका दुख भार,
इसके विषाद का रे न पार!"

—एकतारा : गुंजन

उनका कवि उनको जीवन में विरक्त होने से रोक देता है तो उनका सन्त उनको जीवन पर अनुरक्त होने की अनुमति नहीं देता। इस तरह उनके राग-विराग का सुन्दर सामंजस्य इन पंक्तियों में पाया जाता है—

"मन हो विरक्त जीवन से,
अनुरक्त न हो जीवन पर।"

कवि और सन्त 'ज्योत्स्ना' तक आते-आते एक दूसरे से सामन्जस्य स्थापित कर लेते हैं और यथार्थ एवं आदर्श, भौतिकता एवं आध्यात्मिकता मिल कर एकाकार हो जाते हैं। किन्तु 'युगान्त' में फिर सन्त ने आवेशपूर्ण सुधारवादी बन कर कवि को दबा दिया है फिर भी सरल कवि कहीं-कहीं (प्रथम मिलन जैसी कविता में) अपने विद्रोही स्वर उठाता ही रहा है। बाद की रचनाओं में रागी कवि दबता गया है। इस तरह पन्त जी का काव्य एवं जीवन राग-विराग के परस्पर विरुद्ध तत्वों की संघर्षमयी कहानी है। जो उनका जीवन है, वही उनका काव्य है। डा० बच्चन के शब्दों में "जब इच्छाओं ने उन्हें माधुर्य की ओर खींचा है तब साधना ने उन्हें आदर्शों से बाँध दिया है। राग और विराग के इसी संघर्ष ने जीवन के अनुभवों से भी उन्हें दूर-दूर रक्खा है। वे अनुभवों की गहराई में नहीं पैठ सके, उससे भोग नहीं सके, उसकी तीव्रता अथवा दग्धता को मुखरित नहीं कर सके। जब उनके रागी मन ने अनुभवों की ओर उन्हें निमन्त्रित किया है तो उनकी विरागी चेतना ने जैसे उसे बहलाने के लिए उसके आगे कल्पना के कुछ खिलौने फेंक दिए हैं। पन्त जी के कवि मन ने बस, उसी से रीझ-खेल कर अपने को सन्तुष्ट कर लिया है।"[1] अतः पन्त जी ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने को ही काव्य में रख दिया है। अपने कारुण्यमय जीवन में कवि ने जो साधना की है, वह महान है। कवि विश्व-मानवता के निमित्त

---

१. "पल्लविनी" का "एक दृष्टिकोण", डा० हरिवंशराय बच्चन, पृ० २८, तृतीय संस्करण।

अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की बलि देकर ऊपर उठ गया है। उन्होंने जो कुछ अनुभव किया है उसको अत्यन्त ईमानदारी के साथ काव्य में रख दिया है। वैसे तो उनका भाव जगत अत्यन्त विस्तृत एवं विशाल नहीं है जैसा शेक्सपियर का या कालिदास का। परन्तु उनका भाव-जगत जितना निर्मल, जितना उदात्त, जितना विशाल, जितना मोहक है उसमें से ही पन्त जी एक उच्च कोटि के महाकवि के पद के अधिकारी हैं। वास्तव में "कवि से पाठक बड़ी-बड़ी प्रत्याशायें करता है—सत्य दो, स्वप्न दो, अनुभूति दो, कल्पना दो, संगीत दो, शृङ्गार दो और न जाने क्या-क्या दो। सब की सीमायें हैं और कवि की भी। देखना पड़ेगा कि कौन कितना दे सकता है और कितना देता है। कवित्व का वैभव वरदान भी है और संधान भी। पन्त जी को जो मिला है और जिसकी उन्होंने खोज की है वह सब उन्होंने काव्य को दान कर दिया है। उनकी कविता उनका आत्मदान है।"[1]

सप्तम परिच्छेद

पंत का प्रकृति चित्रण

प्रकृति अनादि काल से मानव की सहचरी रही है। फलतः दोनों में अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। उमड़ते मेघ, द्योतित उडुगण, कल कल निनाद पूर्ण निर्झर, प्रवाहमयी सरितायें, विहँसती कलिकायें, इठलाती लतायें, मुसकाते सुमन, नर्तित मयूर एवं कलरव करते हुए विहग प्रभृति प्रकृति के वैभव ने मानव-मनो भावों को अनन्त काल से उल्लसित किया है। प्रकृति के आँगन में रहकर मानव अपने सुख-दुःख में सान्त्वना एवं आनन्द का अनुभव करता आया है। पेड़-पौधे कभी-कभी कुछ गूढ़ भावों की व्यंजना भी करते हैं। सामान्य मानव दृष्टि भी 'वर्षा की झड़ी के पीछे उनके हर्ष और उल्लास को, ग्रीष्म के प्रचंड आतप में उनकी शिथिलता और म्लानता को, शिशिर के कठोर शासन में उनकी दीनता को, मधुकाल में उनके रसोन्माद, उमंग और हास को, प्रबल वात के झकोरों में उनकी विकलता को, प्रकाश के प्रति उनकी ललक को देख सकती है। इसी प्रकार भावुकों के समक्ष वे अपनी रूप चेष्टा आदि द्वारा कुछ मार्मिक तथ्यों की भी व्यंजना करते हैं।'[1] यों तो कवि अत्यन्त भावुक प्राणी होता है। उसे प्रकृति के हर एक व्यापार में एक जीवन का स्पन्दन, एक चेतन तत्व दिखाई पड़ता है। प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण से प्राप्त आनन्द, वह दूसरों को भी बाँट देना चाहता है। वैज्ञानिक प्रगति के कारण मानव को अधिक सुविधायें मिलने पर भी वह अपने सूने पलों में फुलवारी में जाकर टहलना चाहता है। मानव का प्रकृति के प्रति यह मोह या प्रेम अनादि और चिरन्तन है। यही कारण है कि काव्य में भी प्रकृति ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

भारतीय साहित्य में प्रकृति-वर्णन पहले ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद का कवि प्रकृति के रूप को तन्मय होकर देखता है, प्रकृति की गति और क्षण-क्षण परिवर्तित रूपों में किसी व्यापक और नियामक शक्ति का आवाहन करता हुआ उल्लसित होता है। तदुपरान्त सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत-महाकाव्यों में प्रकृति के कोमल तथा विशद सौन्दर्य का व्यापक चित्रण

---

१. "चिन्तामणि भाग—१, "कविता क्या है"—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १४३।

मिलता है, विशेषकर वाल्मीकि, कालिदास, बाण, भवभूति और प्राकृत कवि प्रवरसेन में प्रकृति-सौन्दर्य के नाना रूप विस्तृत योजना के साथ अंकित हैं। इतना होने पर भी उक्त महाकवियों का लक्ष्य प्रकृति वर्णन नहीं और न उनके लिये प्रकृति किसी प्रेरणा अथवा सदेश का स्रोत ही प्रतीत होती है। आदि कवि वाल्मीकि के अतिरिक्त कालिदास या भवभूति अपनी व्यापक अनुभूति तथा आत्मीयता के कारण प्रकृति के सहज प्रेमी कवियों के अधिक निकट मान सकते हैं। आधुनिक काल में सुप्रसिद्ध बंगाली महाकवि रवीन्द्रनाथ टाकुर प्रकृति के अन्यतम कवि हैं।

हिन्दी के मध्ययुगीन काव्य में प्रकृति का स्थान अत्यन्त गौण है। इस काल के कवियों के प्रकृति-चित्रण में तन्मयता एवं आह्लाद की भावना का नितान्त अभाव है, जो प्रकृति के सच्चे कवियों में पाया जाता है। आधुनिक काल में आकर द्विवेदी युग के श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि कुछ कवियों में प्रकृति-सम्बन्धी आकर्षण एवं सौन्दर्य-बोध की झलक मिलती है, जो उन्हें प्रकृति-कवियों की श्रेणी में बिठा देती है। 'हरिऔध' और मैथिलीशरण आदि द्विवेदीयुगीन कवियों के काव्य में प्रकृति के सुन्दर वर्णन अवश्य मिलते हैं, किन्तु प्रकृति वर्णन उनका लक्ष्य नहीं था और इसके अतिरिक्त उनका प्रकृति-वर्णन, अंग्रेजी कवि पोप की तरह, 'एक कलात्मक चमत्कार मात्र था, मार्मिक अनुभूतियों का संचय नहीं।'[1]

१८वीं तथा १९वीं शती के यूरोपीय और अंग्रेजी कवियों में प्रकृति के प्रति अगाध आकर्षण होने के कारण वे प्रकृतिवादी (Naturalists) कहलवाये। वर्ड्सवर्थ, शैली तथा जर्मन कवि गेटे प्रकृतिवादी हैं जो प्राकृतिक सौन्दर्य में अनन्त जीवन और सर्जन के स्फुरण का अनुभव करते हैं। वर्ड्सवर्थ ने प्रारम्भ में तो प्रकृति को मानव-जीवन का एक मात्र प्रेरणा स्रोत माना है। परन्तु क्रमशः उसने प्रकृति के अन्तराल में किसी व्यापक नियन्त्री-शक्ति का आभास पाया है। शैली के प्रकृति-सम्बन्धी सौन्दर्य बोध में यह आभास सदा ही मिलता है। उसे प्रकृति में सौन्दर्य के साथ व्यापक शक्ति और गति भी दिखाई पड़ती है। गेटे ने प्रकृति में विराट तत्व के दर्शन किए हैं। इन्हीं महाकवियों की श्रेणी में ही हमारे प्रकृति के लाड़ले पन्त की गणना होनी चाहिये।

प्रकृति आदि काल से काव्य-प्रेरणा का स्रोत बनी रही है। वाल्मीकि और वर्ड्सवर्थ की काव्य-सम्बन्धी मूल प्रेरणायें प्रकृति निरीक्षण से ही मिली हैं। पन्त

1 Natural description 'was an artificial trick, not a passionate record of feelings'. —Brook.

सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है । उन्हीं के शब्दों में 'कविता करने की प्रे
ने सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मा
को है । कवि-जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घंटों एकान्त में बैठा, प्र
दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर
एक सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था । जब कभ
ें मूंदकर लेटता था, तो वह दृश्य-पट, चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा क
। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली एक के ऊपर एक उठ
त, नील, धूमिल, कूर्मांचल की छायांकित पर्वत श्रेणियाँ जो अपने शिखरो
त मुकुट हिमालय को धारण की हुई है और अपनी ऊँचाई में आकाश की अव
ीलिमा को और भी ऊपर उठाये हुई है, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नी
ोहन के आश्चर्य में डुबाकर, कुछ काल के लिये, भुला सकती हैं और
यह पर्वत प्रान्त के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जी
ति एक गम्भीर आश्चर्य की भावना, पर्वत ही की तरह, निश्चय रूप से, अ
त है ।'[1] इस प्रकार कवि के प्रकृति-प्रेम ने एक "अज्ञात आकर्षण" को जन्म दि
और इस "अज्ञात आकर्षण" ने अव्यक्त सौन्दर्य को । कवि अपने हृदय को
न्दर्य में विलीन करना चाहता है । प्रकृति ने ही विश्व और जीवन के प्रति
भीर आश्चर्य की भावना भी दी है, जिसने उन्हें एक चिंतक बना दिया है । क
शब्दों से यह सुस्पष्ट है कि केवल आश्चर्य और कौतूहल की भावना प्राकृ
ध्यम से व्यक्त हुई है, जिसे हिन्दी के कुछ आलोचकों ने रहस्यवाद की संज्ञा
, अपने ही में भ्रान्त है ।

"वीणा" में बाल कवि की प्रकृति और माँ-विषयक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई
वीणा" का कवि प्रकृति के प्रति जिज्ञासा की भावना लेकर चलता है, फिर उस
णों पर मोहित उससे तादात्म्य प्राप्त करना चाहता है । वह प्राकृतिक सुषमा
ाला के मादक आकर्षण एवं सौन्दर्य से भी अधिक आकर्षक मानता है ।

> "छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
> तोड़ प्रकृति से भी माया,
> बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
> भूल अभी से इस जग को ।" —वी

"पल्लव" प्रकृति की चित्रशाला है । इसमें कवि की अधिकांश रचनायें व
धान हो गयी हैं, जैसे "छाया", "बादल", "वीचि-विलास", "नक्षत्र", "वसन्त

---

1. आधुनिक कवि—२, पर्यालोचन-सुमित्रानन्दन पन्त; पृ० ८; आठवाँ संस्करण

—मधुवन (गुंजन)

काव्य में इस प्रकार का प्रकृति वर्णन निकृष्ट कोटि का माना गया है किन्तु सन्तोष यह है कि पंत के काव्य में ऐसे वर्णनों का बाहुल्य नहीं है।

किसी वर्णन में वस्तुओं का मन में ग्रहण दो प्रकार से होता है—बिम्ब ग्रहण और अर्थ ग्रहण। 'कमल' शब्द से किसी सरोवर में खिला हुआ श्वेत रक्तिम पंखुड़ियों और दीर्घनाल आदि के सहित एक पुष्प का चित्र मानस-पटल पर अंकित होता है या केवल पद के अर्थ का स्मरण होता है। 'काव्य के दृश्य-चित्रण में पहले प्रकार का संकेत ग्रहण अपेक्षित होता है और व्यवहार तथा शास्त्र चर्चा में दूसरे प्रकार का। बिम्बग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उनके आस-पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है।'[1] कवि में सूक्ष्म दृष्टि एवं अनुराग के अभाव में ऐसे वर्णन असम्भव हैं। प्रकृति के ऐसे संश्लिष्ट चित्रण पंत के काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। मेखलाकार अपार महाकार पर्वत का अपने प्रतिबिम्ब को सहस्र पुष्प नेत्रों से ताल के दर्पण में बार-बार निहारना कितना सुस्पष्ट और सुन्दर है। देखिये—

'पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश।

मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार;
जिसके चरणों में पला ताल,
दर्पण-सा फैला है विशाल।'

—उच्छ्वास (पल्लव)

---

१. चिन्तामणि, भाग १, 'कविता क्या है'—रामचंद्र शुक्ल, पृ० १४७-४८।

आदि। कवि का कल्पना-वैभव इन रचनाओं में सुरक्षित है। यहाँ कवि-प्रकृति के सम्पर्क में आकर आनन्द विभोर हो उठता है और उत्सुकतावश हर एक वस्तु से प्रश्न करता है। यहाँ प्रकृति सजीव एवं साकार हो गई है। कवि प्रकृति में अपने भावों का प्रतिबिम्ब ही नहीं देखता, उसका प्रभाव भी अपने पर पाता है। किन्तु "पल्लव" में "वीणा" की सी भाव-विह्वलता एवं अनुभूति की तीव्रता नहीं मिलती।

"गुंजन" का कवि जीवन की ओर विशेष रूप से अग्रसर होता है। इस संग्रह की प्राकृतिक रचनाओं के मूल में आनन्द एवं सौन्दर्य की भावना सजग है। इन पर नारी-भावना का आरोप प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ता है। "गुंजन" की हर एक पंक्ति में किसी न किसी चित्र की पूर्णता है। "एक-तारा", "नौका-विहार" आदि ऐसी ही रचनायें हैं। यहाँ "पल्लव" की तरह कुछ प्रकृति वर्णन प्रस्तुत करना कवि का ध्येय नहीं रहा। वस्तुतः इसमें कहीं कोई आध्यात्मिक भाव, कहीं कोई विचार-धारा और कहीं जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति करना ही कवि का लक्ष्य बन गया है। इस प्रकार "वीणा" की रचनायें भाव-प्रधान थीं, "पल्लव" की कल्पना-प्रधान, वैसे ही "गुंजन" की प्रकृति-सम्बन्धी रचनायें विचार-प्रधान हैं।[1]

'युगान्त' तक आते-आते कवि प्रकृति को गौण और मानव को अधिक महत्व देता है। प्रकृति और जीवन पर दृष्टिपात करने पर उसे ज्ञात होता है कि प्रकृति प्रसन्न है और मानव चिरविषण्ण एवं मलीन। कवि कोकिल को कलतान के स्थान पर 'पावक कण' बरसाने को प्रबोध करता है, जिससे जीर्ण-शीर्ण 'जग के जड़ बन्धन' नष्ट-भ्रष्ट हो जायें। यहाँ वह मानव-जग की कल्याण-भावना से प्रेरित होकर 'सुन्दरम्' से 'शिवम्' की ओर अग्रसर हुआ है। रूढ़ियों के प्रति विद्रोहात्मक दृष्टि-कोण के साथ-साथ, उसका प्रकृति और छायावाद के प्रति मोह भी छूट जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि 'युगान्त' में कवि के छायावादी-युगीन व्यक्तित्व का अंत है। इस प्रकार बाद की रचनाओं में प्रकृति केवल भावाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में गृहीत है।

यों तो पंत के काव्य में प्रकृति-वर्णन विभिन्न रूपों में हुआ है पर अधिकतर उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति को आलम्बन के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार के वर्णन को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) वस्तु-परिगणन शैली, (२) संश्लिष्ट चित्रण एवं बिम्बग्रहण योजना, (३) मानवीकरण।

---

१. "सुमित्रानन्दन पंत" : विश्वम्भर मानव, पृ० १८८, द्वितीय संस्करण।

होता है। साधारण बिम्ब दृष्टि-सम्बन्धी इन्द्रिय को प्रभावित करते हैं। परन्तु प्रत्येक बिम्ब में दृष्टि-सम्बन्धी साहचर्य (association) रहता ही है। उदाहरणार्थ—

"झींगुर के स्वर का प्रखर तीर केवल प्रशान्ति को रहा चीर,
सन्ध्या-प्रशान्ति को कर गभीर"।

(ध्वनि-सम्बन्धी बिम्ब)

"मिट्टी की सोंधी सुगन्ध में
मिली सूक्ष्म सुमनों की सौरभ"

(गन्ध-सम्बन्धी बिम्ब)

"वह मृदु मुकुलों के मुख में
भरती मोती के चुम्बन,
लहरों में चल करतल में
चाँदी के चंचल उडुगण,'

(स्पर्श-सम्बन्धी बिम्ब)

"देखता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के,
प्रिये! भर-भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को।"

(रस-सम्बन्धी बिम्ब)

"बाँसों का झुरमुट—
सन्ध्या का झुटपुट—
हैं चहक रही चिड़ियाँ
टी-वी-टी-टुट्-टुट्!"

(रंग और ध्वनि-सम्बन्धी बिम्ब)

"मृदु मन्द-मन्द, मन्थर मन्थर, लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही, खोल पालों के पर।"

(गति-सम्बन्धी बिम्ब)

इस प्रकार पन्त का काव्य प्राकृतिक चित्रणों की संश्लिष्ट योजना और बिम्बों से भरा पड़ा है।

वातावरण के रूप में प्रकृति-चित्रण की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। कालिदास के कुमारसम्भव का आरम्भ हिमालय-प्रदेश के प्रकृति वर्णन के साथ हुआ है। पन्त की कुछ वर्णन प्रधान रचनाओं में जो हमें प्रकृति दिखाई

'पल्लव' और 'गुंजन' में ऐसे संश्लिष्ट चित्रों की भरमार है। कवि प्राकृतिक दृश्यों को उनके सम्पूर्ण वैभव के साथ दिखाता है। वह अपने चित्रों की सजीवता एवं मूर्तिमत्ता के लिये रूप, रंग, ध्वनि और गंध का उपयोग करता है। कहीं-कहीं तो कवि एक ही पंक्ति में रंग और ध्वनि का समावेश करता है, जैसे 'ऊपर हरीतिमा नभ गुंजित'। कवि के चित्रों की विशेषता पर 'काव्य कला' परिच्छेद में विशेष प्रकाश डाला गया है।

यह विदित है कि दृश्य-वर्णन में कवि अत्यन्त निपुण है। बाल्यकाल से कवि की अभिलाषा भी यही रही है—

'आँखों से जो देखा, कर को
उसे खींचना सिखलाओ।'

—वीणा

'गुंजन' की 'एकतारा' और 'नौकाविहार' आदि रचनायें इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। बिम्बग्राही होने के कारण वे चित्र स्वयं कवि के सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के प्रमाण हैं। चाँदनी रात के समय गंगा के निर्मल जल में प्रतिबिम्बित पुलिन प्रतिबिम्ब के साथ जुड़कर दुहरे ऊँचे लगते हैं—

'निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिम्बित हो रजत-पुलिन निर्भर
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।'

—नौका विहार

विरही कोक का अपने प्रतिबिम्ब को भ्रान्तिवश अपनी प्रेमिका समझकर जल के उपरितल पर चक्कर काटने का सजीव चित्र कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक है—

"वह कौन विहग ? क्या विकल कोक ?, उड़ता रहने निज विरह शोक
छाया की कोकी को विलोक।"

—नौका विहार

कहीं-कहीं कवि एक ही पंक्ति में दृश्यांकन करता है, जैसे "सरिता की चंचल दृग-कोर" से लहर का, "स्तब्ध-विश्व के अपलक-विस्मय" से नक्षत्र का, "चातक के चिर-जीवन-धर" से बादल का, "ऐ ! विटपी की व्याकुल प्रेयसि !" से छाया का केवल बोध ही नहीं होता, बल्कि उनका पूर्ण चित्र आँखों के सम्मुख नाच उठता है। ऐसे ही चित्रांकन को बिम्ब ग्रहण कहा गया है। बिम्ब का सम्बन्ध केवल दृष्टि-सम्बन्धी इन्द्रियानुभूति से न होकर अन्य इन्द्रियानुभूति से भी होता है, जैसे ध्वनि-सम्बन्धी, गति-सम्बन्धी, स्पर्श-सम्बन्धी आदि सभी इन्द्रियानुभूति से

गई है और उसने प्रकृति को नारीमय रूप में देखते देखते अपने को भी नारी-
में अंकित कर दिया है। उसके काव्य में प्रकृति को नारी रूप में अंकित करने
कई मोहक चित्र हैं। ग्रीष्म ऋतु में सैकत-शैय्या पर लेटी हुई थकित-श्रान्त,
गामी गंगा का नारी-रूप अतीव सुन्दर है—

"सैकत शैय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त निश्चल।"

—नौका-विहार

पवित्र तापस-बाला गंगा के इन्दु-वदन (प्रतिबिम्बित) की आभा से दीप्त
र रूपी करतल और उसके उर्मिल उर पर फैला हुआ कच-जाल नयनों के सम्मुख
व के रूप में एक साथ उपस्थित हो जाता है—

"तापस बाला गंगा निर्मल, शशि-मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल।"

—नौका-विहार

स्वच्छ निर्मल जल पर चपल लहरों का उठना, उसमें नक्षत्र-जड़ित नील
न का प्रतिबिम्बित होना कवि को नीली साड़ी पहनी हुई गोरी सुन्दरी गंगा के
में दिखाई पड़ता है। देखिये—

"गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल अंचल-सा नीलाम्बर।"

—नौका-विहार

गंगा-जल में प्रतिबिम्बित दशमी के चन्द्रमा की तुलना कवि एक मुग्धा
यिका से करता है। शशि लहरों के घूंघट को किंचित हटा कर अपने नतमुख को
रुक-रुक कर दिखाता है—

"लहरों के घूंघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक मुख,
दिखलाता मुग्धा-सा रुक-रुक।"

—नौका-विहार

"पल्लव" की "छाया" कविता इस दृष्टि से अतीव मनोहर है। कवि 'छाया'
एक करुणा-पात्र नारी-रूप में अंकित करता है। भिखारिणी के रूप में छाया का
र्णन देखिये—

"सखि! भिखारिणी-सी तुम पथ पर
फैला कर अपना अंचल

पड़ती है, जैसे "गुंजन" की 'एकतारा' कविता। इसमें सान्ध्य-समय के वातावरण-अंकन की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"नीरव सन्ध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम-प्रान्त।
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर!
खग-कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गोपथ अब धूलि-हीन,
धूसर भुजग सा जिह्म, क्षीण।"

—'एकतारा'

पन्त ने प्रकृति के मानवीय रूप को भी अंकित किया है। मानवीय व्यापारों को प्रकृति में आरोपित कर, उसमें सजीवता लाना छायावादी कविता का एक प्रधान गुण है। पन्त के काव्य में ऐसे उत्कर्षपूर्ण वर्णनों का अभाव भी नहीं। 'पल्लव' की "आँसू" कविता में कवि का एक सश्लिष्ट प्राकृतिक मानवीय व्यापार अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। पावस-ऋतु में इन्द्र धनुष की टन्कार सुन कर चपला रूपी बालाओं का चौंक जाना, वर्षा की धारा-रूपी बाणों की बौछार से भयभीत होकर उनका गिरि के दूसरी ओर दौड़ना और पवन का मेघों को मना कर उन्हें (चपला बालाओं को) दुलार और प्रेम दिखा कर सान्त्वना देना आदि कितने सुन्दर मानव-व्यापारों की योजना हुई है। देखिये—

"इन्द्रधनु की सुन कर टंकार,
उचक चपला के चचल बाल,
दौड़ते थे गिरि के उस पार,
देख उड़ते विशिखों की धार;
मरुत जब उनको द्रुत पुचकार,
रोक देता था मेघासार।"

—आँसू

किन्तु, कवि ने प्रकृति को अधिकतर नारी के रूप में देखा है। उन्हीं के शब्दों में "प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है।........कभी जब मैंने प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव किया है तब मैंने अपने को भी नारी-रूप में अंकित किया है।"[1] इस प्रकार प्रकृति कवि के प्राणों में

---

१. आधुनिक कवि, भाग—२, का पर्यालोचन, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ९; आठवाँ संस्करण।

"पर पीड़ा से पीड़ित होना
मुझे सिखा दो, कर मदहीना ।"

—छाया

उन्होंने मधुप कुमारि से मीठे गान सिखाने एवं कुसुम-पात्रों से मधुपान कराने का अनुरोध किया है—

"सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे गान
कुसुम के चुने कटोरों से
करा दो ना, कुछ-कुछ मधुपान ।"

इसमें सन्देह नहीं कि हमारा कवि प्रकृति के विविध अंगों पर मुग्ध हुआ और प्रकृति ने उसके प्राणों को सौन्दर्य एवं माधुर्य से लबालब भर दिया ।

दार्शनिक विचारों को प्रकृति के माध्यम से प्रकट करने की प्रवृत्ति भी पन्त में वर्तमान है । यह प्रवृत्ति हिन्दी के कुछ भक्त कवियों, मुख्यतः कबीर और महादेवी जैसे रहस्यवादी कवियों में प्रचुर मात्रा में मिलती है । पन्त ने प्रकृति के इस रूप का चित्रण भी नहीं छोड़ा है । उन्होंने जगत के अटल नियम परिवर्तन का अत्यन्त मनोरम स्वरूप प्राकृतिक उपकरणों से दृष्टिगोचर कराया है । जिस प्रकार अरुण किसलय कुछ समय के उपरान्त पीला पत्ता बन जाता है उसी प्रकार मानव शरीर भी बाल-कोमलता से वृद्ध-जर्जरता को प्राप्त होता है । जीवन में चाँदनी रातों के समान सुख के पल कम होते हैं और दुख रूपी अन्धकार की रातें ही अधिक । देखिये—

"आज बचपन का कोमल-गात
जरा का पीला-पात !
चार दिन सुखद चाँदनी-रात
और फिर अन्धकार अज्ञात ।"

—परिवर्तन

दार्शनिक दृष्टिकोण से "गुंजन" की "नौका-विहार" कविता उल्लेखनीय गंगा के विशद वर्णन के उपरान्त कवि जग-जीवन पर अपने दार्शनिक विचार : करता है । उनके अनुसार "इस गंगा की धारा के समान ही जग-जीवन का है । जीवन में गति और संगम भी अनन्त है । गगन की नीलिमा, शशि का मन्दहास, ऊर्मियों का विलास जिस प्रकार शाश्वत है उसी प्रकार जग-जीवन ख, शान्ति एवं उल्लास भी । हे ! जग-जीवन के कर्णधार ! इस जन्म-मरण के पुलिनों के बीच जीवन-नौका का विहार भी शाश्वत है ।

आँसू रूपी शिशिर के ओस-कणों के गिरने से कपोल रूपी पूलों का मुरझा जाना रूपक का अत्युत्तम प्रयोग है—

"शिशिर-सा झर नयनों का नीर
झुलस देता गालों के फूल।"

—परिवर्तन

कवि ने भावों के स्पष्टीकरण के लिए प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग भी किया है। "शशि" सुख का, घन और अंधकार दुख का, "साँझ-उषा का आंगन" सुख-दुखमय मानव-जीवन के प्रतीक-रूप में गृहीत हुए हैं।

"फिर घन में ओझल हो शशि
फिर शशि से ओझल हो घन"

(सुख-दुख के प्रतीक)

"यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का"

(मानव-जीवन का प्रतीक)

इस प्रकार प्राकृतिक विम्ब चाहे शुद्ध भावात्मक हो या बौद्धिक, उसमें रूपकात्मक तत्त्व तो रहता ही है और हल्का-सा चित्र भी सजीव रूप में उपस्थित होता है।

उपदेशक के रूप में प्रकृति-चित्रण की परिपाटी अधिकतर पाश्चात्य रोमानी कवियों में पाई जाती है। कवि प्रकृति से उपदेश ग्रहण करने में लालसा प्रकट करता है। वर्ड्सवर्थ का कथन है "(तुम) वस्तुओं के प्रकाश में आओ और प्रकृति को अपने अध्यापक बनने दो।"[1] शेली स्कॉइलार्क (Skylark) से अनुरोध करता है, (अपने आनन्द का कुछ अंश देकर मुझे भी आनन्दित होना सिखा दो)—

"सिखा दो मुझे तनिक उल्लास
तुम्हें है जो कुछ भी प्रिय ज्ञान।"[2]

इन कवियों के समान पन्त में भी प्राकृतिक वस्तुओं से उपदेश पाने की लालसा है। वे छाया के पर-दुख हारिणी और सेवामयी रूप को देखकर उससे क्या सीखना चाहते हैं, यह देखिये—

---

1. "Come forth into the light of things.
Let Nature to your teacher" —*Wordsworth.*

2. "Teach me half the gladness.
That thy brain must know;" —*P. B. Shelley.*

"इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम !
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजतहास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास !
हे जग-जीवन के कर्णधार, चिर जन्म-मरण के आर-पार,
शाश्वत जीवन-नौका विहार !"

—नौका-विहार

इस प्रकार कवि पन्त का प्रकृति-वर्णन-प्रणाली अत्यन्त विशद एवं बहुमुखी है। संक्षेप में कवि ने प्रकृति को तटस्थ होकर भी देखा है, उसमें अपने हृदय का स्पन्दन भी सुना है, उससे तादात्म्य भी स्थापित किया है, उसमें नारी के भी दर्शन किये है और भारतीय सर्ववाद की झलक भी पाई है। उनका प्रकृति-चित्रण व्यापक है। निस्सन्देह कहा जा सकता है कि महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त प्रकृति के सुन्दरतम कवि हैं और इस क्षेत्र में उनके सानी कलाकार विश्व-साहित्य में विरले ही होंगे।

अष्टम परिच्छेद

मूल्यांकन

अनादि काल से ही विश्व के काव्य साहित्य में दो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, वे हैं परम्परावाद (classicism) और स्वच्छन्दतावाद (romanticism)। परम्परावाद के कवि भाषागत सौष्ठव एवं गाम्भीर्य को प्रधानता देने के साथ ही निर्वैयक्तिक होकर काव्य-निर्माण करते हैं। वे अपनी ओर से अधिक न कहकर अपने पात्रों के माध्यम से कहलाते हैं। वे मानव-जीवन के सुकृतों एवं दुष्कृतों को खुलकर खेलने का अवकाश देते हैं। इन परम्परावादी कलाकारों की प्रवृत्ति अधिकतर खण्ड-काव्य एवं महाकाव्य लिखने की होती है। वाल्मीकि, व्यास, होमर, मिल्टन, मधुसूदनदत्त, मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति महाकवि इसी के अन्तर्गत आते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि इसके ठीक विपरीत अपनी वैयक्तिक हृदयगत भावनाओं को स्वच्छन्द होकर प्रकट करते हैं और किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं करते। इनमें अधिकतर छोटी एवं प्रवाहपूर्ण रचनायें लिखने की प्रवृत्ति के साथ ही प्रकृति, संगीत एवं आदर्शों के प्रति अनन्य अनुराग पाया जाता है। शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, बाइरन, रवीन्द्र प्रभृति महान कवि इसके अन्तर्गत आते हैं। किन्तु कालिदास, जयशंकरप्रसाद, प्रभृति कुछ महाकवियों में दोनों प्रवृत्तियों का सामञ्जस्य एवं सन्तुलन प्राप्त होता है। वास्तव में कोई कवि पूर्णरूपेण परम्परावादी या स्वच्छन्दतावादी नहीं हो सकता, केवल उसकी प्रवृत्ति एक की ओर अधिक रहती है। स्वच्छन्दतावादी कवि कीट्स एवं निराला में परम्परावाद की कुछ वृत्तियाँ देखने को मिलती हैं तो परम्परावादी कवि मिल्टन एवं मधुसूदन दत्त में स्वच्छन्दतावाद की झलक मिलती है। अतः विश्व-साहित्य के मुख्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के साथ पन्तजी की तुलना कर, उनके बीच पारस्परिक साम्य एवं वैभिन्य पर विचार करना कवि के मूल्यांकन में अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा।

महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं। वे विश्व के प्रथम रोमानी कवि माने जाते हैं। उनके काव्यों एवं नाटकों के पात्र भारतीयता के भव्य आलोक स्तम्भ हैं। उनके कृतित्व में स्वर्णकालीन भारत का वैभव सुरक्षित है। उन्होंने मानवीय भावनाओं को अपनी कृतियों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनमें मानव के अंतःकरण में प्रवेश कर परिस्थिति के अनुकूल विविध भावों का सूक्ष्मतम अंकन प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है। कालिदास अपने काव्य की सार्वभौमिकता के कारण विश्व भर में लोकप्रिय हो गये। उन्होंने जर्मन के महाकवि गेटे तक को अत्यधिक प्रभावित किया। विश्व के महाकवियों में उनकी गणना सर्वप्रथम होती है।

कालिदास की भाँति पंत भी मूलतः सौन्दर्य, शृंगार एवं कल्पना के कवि हैं। पंत की आरम्भिक कृतियों पर कालिदास का प्रभाव स्पष्ट है। दोनों कवियों ने विश्व तथा जीवन के सौन्दर्य की ओर सजग होकर, उसका सूक्ष्मतम अंकन प्रस्तुत किया है। प्राकृतिक एवं मानसिक सौन्दर्य-वैभव के अगणित प्रमाण उनके काव्य में उपलब्ध होते हैं। किन्तु कालिदास में सौन्दर्य-भावना की सूक्ष्मता एवं व्यापकता पंत से कहीं अधिक है। प्रेम और शृंगार की अभिव्यक्ति जितनी मार्मिक ढंग से कविकुल गुरु ने की है, उतनी व्यापकता के साथ पंत ने नहीं। सरस प्रसंगों पर जहाँ महाकवि रुककर गहन अनुभूति के साथ रस उँडेल देते हैं, वहाँ पंत केवल रस का संकेत मात्र कर चले जाते हैं। सभी रसों की अभिव्यक्ति अत्यन्त सफलता के साथ करते हुए भी कालिदास की प्रवृत्ति शृंगार तथा करुण रसों के अंकन की ओर अधिक रहती है तो पंत जी के काव्य में सभी रस केवल एक नियमित मात्रा एवं परिमाण में उपलब्ध होते हैं। "कुमारसंभव" के चतुर्थ सर्ग में रति का मदन के लिए विलाप तथा "रघुवंश" के अष्टम सर्ग में आज का इन्दुमती के लिए विलाप-दोनों प्रसंगों में करुण रस का संचार मार्मिकता से किया गया है तो पंत के "उच्छ्वास" और "आँसू" में करुण रस न्यूनाधिक मात्रा में मिलता है। कालिदास का "मेघदूत" और पंत की "ग्रन्थि" में विप्रलंभ शृंगार को गहनतर अभिव्यक्ति मिलती है। दोनों कृतियों में कवियों की वैयक्तिक विरहानुभूति अत्यन्त व्याकुलता के साथ प्रकट हुई है। किन्तु कालिदास की विश्व-व्यापिनी अनुभूति इतनी गहन हो जाती है कि उनका यक्ष विरहोन्माद में मेघ से पागलों की भाँति वार्तालाप करता है और उसकी विरह-वेदना पर प्राकृतिक विभूति भी द्रवित हो उठती है। "कुमारसम्भव" के शिव और पार्वती, "अभिज्ञान शाकुंतलम्" के दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन एक अलौकिक आनन्द से समन्वित होकर प्रेम-साधना की उदात्तता का समर्थन करता है। शृंगार एवं सौन्दर्य के अतिरिक्त महाकवि ने मार्मिक या मानवीय अनुभूतियों का सुन्दर वर्णन

किया है। शकुन्तला के अपने पतिगृह में जाते समय महर्षि कण्व का हृदय द्रवीभूत हो जाता है और वे कह उठते हैं—

"यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठ स्तम्भित बाष्पवृत्ति कलुषश्चिन्ताजड दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिद स्नेहादरण्यौकस
पीड्यन्ते गृहिण कथं नु तनया विश्लेष दुःखैर्नवै. ।"

—शाकुन्तल

"आज शकुन्तला की विदा का स्मरण करते ही उत्कंठा के कारण मेरा हृदय उच्छ्वसित हो रहा है। अश्रुओं के अवरोध के कारण कण्ठ गद्गद् हो रहा है, चिंता के कारण दृष्टि मंद पड़ गयी है, मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। आज स्नेह के कारण मेरे जैसे वीतरागी वनवासी को इतनी पीड़ा हो रही है तो प्रथम बार अपनी पुत्री को विदा करने वाले गृहस्थों को कितना दुःख होगा ?" इस प्रकार पंत की अपेक्षा कालिदास में हृदय-पक्ष अधिक सशक्त है।

इन दोनों कवियों के काव्य में प्रकृति का एक विशिष्ट स्थान है। दोनों कवि प्रकृति के बीच अनन्त आनन्द का अनुभव करते हैं। जहाँ एक ओर कालिदास प्रकृति और मानव को एक दूसरे के स्नेहालिंगन में बाँध देते हैं वहाँ पंत केवल प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण का अंकन करते हैं। परन्तु कालिदास ने 'कुमारसम्भव' का हिमगिरि-वर्णन, 'रघुवंश' में समुद्र का विशद वर्णन एवं 'ऋतुसंहार' में प्रकृति का उन्मुक्त वर्णन कर उसको अपने काव्य के *आलम्बन के रूप में भी ग्रहण किया।* *दोनों कवियों* की दृष्टि प्रकृति के सुकुमार व्यापारों, सुन्दर दृश्यों पर अधिक टिकती है। प्रकृति के प्रति दोनों का प्रेम अपार है। उनके काव्य में प्रकृति के अनेक संश्लिष्ट चित्रों एवं बिम्बों की भरमार है। किन्तु महाकवि जड़ प्रकृति में चेतनता का आरोप करने के अतिरिक्त उसमें मानवीय भावनाओं का दर्शन कराता है। प्रकृति एवं मानव को कवि पारस्परिक प्रेम-पाशों में बाँध देते हैं। शकुन्तला के पतिगृह जाने के लिए विदा लेते समय मृगीगण वियोग दुःख के कारण कुश के घास को मुँह से गिरा रहे हैं, उनको घास खाना नहीं सुहाता। नाचने वाली मयूरी ने नाचना छोड़ दिया। लता पीले पातों को गिराने के व्याज से आँसू बरसा रही है—

'उद्गलितदर्भकवला मृग्य परित्यक्तनर्तना मयूरी ।
अपसृतपाण्डुपत्रा . मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ।"

—शाकुन्तल

अचेतन प्रकृति का हार्दिक शोक, अंत.करण की करुण दशा को व्यंजित करने वाली प्रकृति की यह मूकवाणी सहृदय महाकवि कालिदास के अतिरिक्त कौन सुन सकता है ?

कालिदास और पंत आदर्शवादी हैं। कालिदास के काव्य में स्वर्णकालीन भारतीय जीवन का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। वे रसवादी, आशावादी एवं आनन्दवादी कवि हैं, अतः उनका सम्पूर्ण कृतित्व उदात्त पात्रों से भरा पड़ा है। दिलीप का त्याग, पार्वती का तप, शकुन्तला का प्रेम, कण्व का ऋषित्व, याचक की इच्छापूर्ति में तत्पर रघु आदि कालिदास की आदर्श-भावना के कतिपय दृष्टान्त हैं। महाकवि मानव की अच्छाई में अटल विश्वास रखकर, उसी का मानसिक सौन्दर्य एवं आन्तरिक भावनाओं का विश्लेषण करते चलते हैं। इधर हमारे कवि का आदर्श "ज्योत्स्ना" के सैद्धान्तिक स्वप्न से अधिक विस्तृत नहीं हो पाया।

काव्य-कला की दृष्टि से दोनों कवि महान् कलाकार ठहरते हैं। दोनों का शब्द-चयन अत्यन्त प्रौढ़ है। दोनों ने भाषा को शिष्ट एवं परिष्कृत बना दिया। चित्रकार की तूलिका की भाँति दोनों की लेखनी चित्रों में रंग भरकर उनको सजीव, आकर्षक, सौन्दर्यवर्धक एवं ग्राह्य बनाती है। कालिदास अपनी उपमाओं के लिये प्रसिद्ध हैं। सामान्यतः कवि उपमा के माध्यम से किसी भाव या क्रिया-व्यापार का निरूपण अत्यन्त सफलता के साथ करते हैं। प्रभाव-साम्य की दृष्टि से उनकी उपमायें अद्वितीय हैं। अतः "उपमा कालिदासस्य" वाला भारतीय आभाणक समुचित ही है। कालिदास चुने हुए थोड़े शब्दों से जिस भाव की अभिव्यक्ति करते हैं, दूसरा कवि विस्तार से लिखकर भी उसे व्यक्त नहीं कर सकता। कालिदास का प्रभाव पंत पर सुस्पष्ट है। वे सभी क्षेत्रों में अधिक विशाल एवं विराट चित्रपट पर कार्य करते दिखाई देते हैं।

रवीन्द्र को विश्व-साहित्य में अमर स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपने युग की चेतना को साहित्य के माध्यम से प्रकट कर देश की संस्कृति एवं सभ्यता का आकलन कराया है। अपने भावों एवं विचारों को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने अत्यन्त विशाल चित्रपट पर कार्य किया और विभिन्न साधन-मार्गों को अपनाया। वे केवल कवि ही नहीं थे, अपितु एक ऊँचे कोटि के दार्शनिक, महान नाटककार, सरस उपन्यासकार, सुन्दर कहानी-लेखक, महान निबन्धकार, मर्मज्ञ संगीतज्ञ और नाट्य तथा चित्रकलाओं के उन्नायक कलाकार भी थे। अपनी परम्परा से प्रभावित होते हुए भी उन्होंने मानव-जीवन के चिरन्तन मूल्यों को ग्रहण कर एक सशक्त विचारधारा एवं दर्शन का प्रतिपादन किया है। उन्होंने पूर्व और पश्चिम, प्राचीन और नवीन, जड़ और चेतन, तथा व्यक्ति और समाज में सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। चिरन्तन मानव की एकता में विश्वास रखने वाले रवीन्द्र ने विश्व-मानव-बन्धुत्व का प्रचार किया। इस प्रकार अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं महान व्यक्तित्व के कारण उन्होंने देश की विचारधारा को प्रभावित किया। हिन्दी की

छायावादी काव्य-धारा पर भी उनका प्रभाव पड़ा। रवीन्द्र से प्रारम्भिक प्रेरणा ग्रहण करने वाले छायावादी कवियों में क्रमशः अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का संगठन हुआ।

पंत की "वीणा" के कतिपय गीतों पर रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट है। 'वीणा' के आमुख में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि "मम जीवन का प्रमुदित प्रात" के गीत पर रवीन्द्र के "अन्तर मम विकसित कर" की छाया है। किन्तु प्रारम्भिक कृतियों के रचनाकाल में ही पंत के कवि व्यक्तित्व का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। रवीन्द्र और पंत की काव्य-प्रेरणाओं में पर्याप्त साम्य है। दोनों में पूर्व और पश्चिम के आदर्शों एवं मान्यताओं को मिलाने की उत्कट आकांक्षा मिलती है। दोनों कवियों पर प्राचीन संस्कृत एवं पाश्चात्य साहित्यों का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रभाव कहीं का भी क्यों न हो, इन दोनों कवियों के काव्य, अपने मौलिक सौन्दर्य से, अपने मौलिक मधुर एवं समर्थ शब्द बल से, अपने नूतन कल्पना-वैभव एवं दर्शन-प्रभाव से, अपनी अनूठी गति से सुशोभित हैं। दोनों कवि भारतीय संस्कृति के प्रकाश-स्तम्भ हैं। रवीन्द्र में वैष्णवों की तन्मयता के साथ शाक्त मत का भी प्रभाव देखा जा सकता है। भाषा-परिष्कार तथा अलंकार योजना में दोनों ने कविकुल गुरु कालिदास को आदर्श रूप में ग्रहण किया। "उर्वशी" और "शकुन्तला" के सौन्दर्य वर्णन करते हुए रवीन्द्र ने, "अप्सरा" और "भावी पत्नी" के सौन्दर्यांकन करते हुए पंत ने, सूक्ष्म उपमानों का प्रयोग किया है। रवीन्द्र और पंत के उर्वशी एवं भावी पत्नी के चित्र एक दूसरे से बिल्कुल मिल जाते हैं, जैसे—

"द्विधाय जड़ित-पदे, कम्प्रवक्षे, नम्रनेत्रपाते
मदहास्ये नाहि चल, सलज्जित बासर शय्याते
स्तब्ध अर्ध राते।"

—उर्वशी

× × × ×

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात
विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप
जड़ित-पद, नमित पलक दृगपात
पास जब आ न सकोगी प्राण!

—भावी पत्नी

दोनों कवि शृंगार एवं सौन्दर्य का उदात्तीकरण कर लेते हैं। उनके कल्पित में एक सरल, सौम्य एवं पावन मूर्ति का आभास मिलता है। सौन्दर्य का व्यापक एवं अतीन्द्रिय रूप दोनों के काव्य में मिलता है।

दोनों कवियों में मानवता के प्रति असीम अनुराग है। उनमें मानवता को कृत्रिम दीवारों से खण्डित करने वाले धर्म, वर्ण, जाति आदि से तीव्र असन्तोष है। रवीन्द्र का मानवतावादी दृष्टिकोण पंत से कहीं विस्तृत एवं सशक्त धरातल पर स्थित है। मानव-जीवन के चिरन्तन मूल्यों एवं उसकी समस्याओं को पहचानने की शक्ति रवीन्द्र मे अपार है। रवीन्द्र मानवता के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त करते हैं कि "उस अत्यन्त सुन्दर भुवन मे मैं मरना नही चाहता, मानवों के मध्य में जीवित रहना चाहता हूं।"

"मरिते चाहि ना आमि सुन्दर भुवने
मानवेर माझे उनमि बाँचि बारे चाह।"

पंत भी "युगान्तर" मे मानव के प्रति अपना अनन्य अनुराग व्यक्त करते हैं—

"क्या कमी तुम्हे है त्रिभुवन मे
यदि बने रह सको तुम मानव ?"

काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी रवीन्द्र और पंत एक दूसरे के निकट हैं। सफल अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने भाषा का अधिक परिष्कार किया। रवीन्द्र के गीतों पर ग्राम-गीतों की परम्परा का प्रभाव पाया जाता है। अपनी व्यावहारिकता के कारण उनके गीतों का पर्याप्त प्रचार है। काव्य के क्रमिक-विकास की दृष्टि से वे दोनों एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं। रवीन्द्र की काव्य प्रतिभा उत्तरोत्तर विकासोन्मुख रही है तो पंत की ह्रासोन्मुख। अपनी संपूर्ण साहित्यिक कृतियो मे रवीन्द्र पंत से अधिक विस्तृत चित्रपट पर कार्य करते दिखाई देते हैं। रवीन्द्र के, शिशु-साहित्य और ग्राम-गीतों से लेकर सांस्कृतिक कृतियों तक, लिखने के पीछे उनका सामाजिक एव राजनैतिक लक्ष्य भी वर्तमान है। दोनो कवियो के काव्य में प्रकृति का विशद वर्णन मिलता है। दोनों सौन्दर्यवादी कवि एव कलाधर हैं। दोनो का काव्य उनके वैयक्तिक जीवन से भिन्न नही है। दोनों में निर्मलता, पावनता एव प्रशान्तता मिलती है। इन सभी समानताओं के कारण हिन्दी के छायावादी कवियो मे केवल पंत ही रवीन्द्र के अधिक निकट दिखाई पड़ते हैं।

भारतीय संस्कृति के अनुपम कवि श्री जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उनमें रवीन्द्र की भाँति सर्वतोमुखी प्रतिभा है। वे मूलतः कवि होते हुए भी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार, एक सफल उपन्यासकार एव कहानी लेखक, भारतीय इतिहास एव दर्शन के मर्मज्ञ तथा उच्च कोटि के निबन्ध लेखक भी हैं। उनके संपूर्ण कृतित्व मे प्रसाद का स्वस्थ एवं गम्भीर व्यक्तित्व झलक उठता है। अपनी गभीर एव गहन साधना में कवि ने मानव जीवन के सुकुमार और कठोर पक्ष, उल्लास और विषाद, आशा और निराशा, उत्थान और पतन, संयोग और वियोग का सुन्दर अंकन किया है। वे महाकवियों के आदर्श मार्ग

पर ऊपर की ओर उठकर हुए हैं। उनके 'चित्राधार', 'कानन कुसुम', 'महाराणा का महत्त्व', 'करुणालय', 'प्रेमपथिक' और 'झरना' नामक काव्यों में उनकी काव्य-कला का विकास देखने को मिलता है। 'आँसू' में कवि की वैयक्तिक वेदना एवं पीड़ा लघु छन्दों में साकार हो गई है। प्रसाद की 'आँसू' और पंत की 'ग्रन्थि' में पीड़ा की मार्मिकता की दृष्टि से अधिक साम्य है। विगत-प्रणय-स्मृतियाँ 'आँसू' के कवि को व्याकुल कर देती हैं। अन्त में कवि वैयक्तिक पीड़ा का विश्व-धरातल पर उदात्तीकरण कर लेता है। 'लहर' के गीतों में प्रेमी एवं प्रेमिका के प्रणय-व्यापार की मादक छाया है। प्रसाद के कवि व्यक्तित्व की चरम परिणति 'कामायनी' महाकाव्य में देखी जा सकती है। इसमें कवि की कला के चरमोत्कर्ष का दर्शन होता है। यह कवि के गूढ़ जीवन चिन्तन से अनुप्राणित है। इसमें इच्छा, ज्ञान, क्रिया का समन्वय प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रेरित है। कवि मानव मन की व्याख्या कर अंत में उसमें आनन्द की प्रतिष्ठा करता है। सम्पूर्ण काव्य में कवि का समन्वयवादी दृष्टिकोण रहा है और हृदय-बुद्धि, नारी पुरुष, मानव प्रकृति, व्यक्ति-समाज, विरह-मिलन, सुख-दुख, जड़-चेतन सभी का संगम हो जाता है। समरसता जन्य आनन्द को मानव कल्याण में नियोजित करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। कामायनी का कवि मानवता को आधार शिला के रूप में ग्रहण कर चलता है और वह मानव को सुखी बनाने में प्रयत्नशील है। इसमें कवि ने अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों से ऊपर उठकर विचार किया। मनु, श्रद्धा, इडा के चित्र प्रस्तुत करने में रूप, गुण एवं भाव का अंकन कवि कर देता है। वह मानव-मन की विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण करने में कुशल है। 'कामायनी' काव्य में दर्शन और दर्शन में काव्य है तथा वह मनोविज्ञान में काव्य और काव्य में मनोविज्ञान भी है। इस प्रकार काव्य और दार्शनिक आनन्दवाद के सुन्दर संयोग से निर्मित 'कामायनी' प्रसाद के महान् कृतित्व की प्रतिनिधि रचना है। अतः प्रसाद महाकवि होने के साथ-साथ महाकाव्यकार भी हुए हैं।

प्रसाद और पंत छायावाद की उपज से कहीं अधिक उसके निर्माता रहे हैं। दोनों मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि होते हुए भी प्रसाद का झुकाव प्रेम की ओर और पंत का झुकाव सौन्दर्य की ओर कहीं अधिक है। प्रसाद में चिंतन की गम्भीरता है तो पंत में कोमल भावुकता। प्रसाद उच्चकोटि के कलाकार होने के साथ युग-द्रष्टा एवं मौलिक पात्र-द्रष्टा भी है, किन्तु पंत के कलाकार का रूप ही उज्ज्वल है और कवि के अन्य दो रूपों का समुचित विकास नहीं हुआ। काव्य-कला की दृष्टि से प्रसाद और पंत में अधिक साम्य है। दोनों कवियों का शब्दचयन अत्यन्त प्रौढ़ है। अपने काव्य-निर्माण में दोनों कवियों ने संगीत एवं गेयतत्त्व को प्राधान्य दिया है। कला के क्षेत्र में प्रसाद से भी पंत ने अधिक मार्मिकता एवं प्रांजलता का परिचय दिया है। पंत में अलंकरण की प्रवृत्ति कहीं अधिक है। वर्णन-पटुता प्रसाद जी में

पंत से आगे हैं। जहाँ प्रसाद बिम्बों को धूमिल एवं अस्पष्ट बनाकर अदाश्य बनाते हैं वहीं पंत बिम्बों में अधिक प्राण फूँक देते हैं। प्रसाद मूलतः कवि हैं तो पंत मूलतः कलाकार।

प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम एवं तादात्म्य की भावना के कारण पंत इस क्षेत्र में प्रसाद से आगे बढ़ जाते हैं। प्रसाद के काव्य में भी प्रकृति का समुचित स्थान होते हुए भी उन्होंने कालिदास की भाँति उसे मानव की सहचरि के रूप में ग्रहण किया है। प्रकृति-चित्रण प्रसाद का लक्ष्य नहीं वह मानव भावनाओं को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र है। प्रसाद का चिंतन एवं अनुभूति-पक्ष अत्यन्त सबल है तो पंत का कल्पना-पक्ष अत्यन्त सशक्त। प्रसाद एक विकासशील कवि हैं तो पंत ह्रासोन्मुख। काव्य के क्षेत्र में भी प्रसाद पंत से अधिक विस्तृत रंगमंच पर कार्य करते प्रतीत होते हैं। प्रसाद ने अपने जीवन-दर्शन को काव्य की आत्मा में मिला दिया है। अतः उनके काव्य में दार्शनिकता एवं सरसता आद्यन्त मिलती है। इस क्षेत्र में पंत को कम सफलता प्राप्त हुई है। पंत के कवि व्यक्तित्व ने बाह्य प्रभावों से प्रभावित होकर विभिन्न मार्गों का अनुसरण किया है, किन्तु प्रसाद का व्यक्तित्व केवल अपनी आन्तरिक चेतना से अनुप्राणित होकर चला है। प्रसाद बाह्य प्रभावों से अपने सुदृढ़ विकासमय कवि व्यक्तित्व को बचाकर, अचंचल आत्म-विश्वास के साथ अन्त तक आगे बढ़ते ही गये हैं। प्रसाद की महानता का यही रहस्य है। प्रसाद पंत से भी अधिक निर्वैयक्तिक कलाकार हैं।

छायावाद के कवियों में निराला का वही स्थान है, जो स्थान अंग्रेजी रोमानी कवियों में बाइरन का है। निराला इन सबसे अधिक विद्रोही एवं क्रान्तिकारी कवि हैं। वे किसी प्रकार के बन्धनों को स्वीकार करना नहीं जानते और उनके काव्य में स्वच्छन्दता सर्वत्र दृष्टिगत होती है। उन्होंने प्राचीन छन्दों के बन्धनों को तोड़कर कविता में संगीत एवं लय को प्रमुख स्थान दिया है। उनके मुक्त छन्दों में भावना का सुन्दर प्रवाह मिलता है। उन्होंने गीतों से लेकर खण्ड-काव्यों तक का पूर्ण साफल्य के साथ निर्माण किया है। एक ओर गीतिका के लघु गीत हैं तो दूसरी ओर 'तुलसीदास' एवं 'राम की शक्ति पूजा' आदि खण्ड-काव्य। कवि अपने गीतों में भावना के साथ रूप-रंग भी भर देता है। यथार्थ के अंकन की उसकी शैली अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़ी है। उसके भिक्षुक का यथार्थ वर्णन द्रष्टव्य है—

'वह आता,
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक

कर एकाकार हो जावें।"[1] किन्तु जहाँ पन्त प्रकृति की अनन्त सुषमा में ही तल्लीन रहते हैं वहाँ वर्ड्सवर्थ प्रकृति की शोभा में हर्ष विभोर न होकर, उससे दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों को ग्रहण करने के लिए तत्पर दिखाई पड़ता है। वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति को एक सन्देशवाहक एवं गुरु ठहराया है। उसने प्रकृति का आध्यात्मीकरण किया है। वह प्रकृति के कवि से कहीं अधिक प्रकृति का व्याख्याकार है। वह प्राकृतिक सौन्दर्य के अंकन से कहीं अधिक उसके आन्तरिक मूल्यों को प्राधान्य देता है। प्रकृति के बाह्य आवरण से आत्मा तक जाने की प्रवृत्ति उनमें अधिक है। इसके ठीक विपरीत पन्त मूलतः प्रकृति का कवि है। वह प्राकृतिक सहचरों के बीच रह कर आनन्द-विभोर हो उठता है, उसका हर एक क्रिया-कम्पन कवि के हृदय में स्पन्दन उत्पन्न कर देता है। यह प्रकृति के मोह के कारण बाला के बाल-जाल से भी मुक्ति पाना चाहता है। कवि का व्यक्तित्व सम्पूर्ण प्रकृति मे बिखर जाता है तो प्रकृति स्वय उसके प्राणों मे समा जाती है और उसके कलात्मक पाशों में बँध जाती है। प्रकृति वर्ड्सवर्थ के लिए केवल आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों के वहन करने का माध्यम मात्र है, वह उसका साध्य नहीं। किन्तु पन्त का लक्ष्य प्रकृति की अनन्त सुषमा का साक्षात्कार करना एवं कराना है। अतः प्रकृति के कवि के रूप में पन्त का स्थान वर्ड्सवर्थ से ऊँचा है।

वर्ड्सवर्थ का, प्रकृति एवं मानव के प्रति, एक ही दृष्टिकोण रहा है। मानव के बाह्य आवरण से भी आन्तरिक सूक्ष्मता की ओर उसकी प्रवृत्ति अधिक है। कवि मानव और प्रकृति के पारस्परिक सामन्जस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर, मानव को उसके नैसर्गिक रूप में देखना चाहता है। शक्ति, सहिष्णुता, सादगी, धैर्य तथा आशा से युक्त मानव ही उसका आदर्श मानव है। किन्तु पन्त ने मानव-जीवन मे प्रेम, त्याग, विश्वास एवं साधना को अधिक प्रधानता दी है। दोनो भावुक कवियों मे प्रबन्ध लिखने की प्रवृत्ति कम दिखाई देती है। प्रगीतो एवं मुक्तकों के क्षेत्र में दोनो ने सफलता के साथ काव्य-रचना की। दोनों की कविता आवेगपूर्ण न होकर कवियो के स्वस्थ एवं शान्त क्षणो मे लिखी गयी सी लगती है। दोनो की कविता मे चिन्तन की गहनता, अद्भुत संयम, शान्त एवं गम्भीर स्निग्धता आदि के दर्शन होते हैं। दोनो के काव्य के विकास के साथ अनुभूति एवं भावना की अपेक्षा चिन्तन को, काव्यात्मकला की अपेक्षा दर्शन को प्रामुख्य मिलता गया है।

1. 'Since nature lifted him out of himself, he sought for a higher state in which its soul and the soul of man should be united

ाव्य-कला की दृष्टि से वर्ड्सवर्थ और पन्त मे कोई साम्य नही। जहाँ
ने चित्रो एव बिम्बो को केवल ध्वनि के माध्यम से ग्राह्य बनाने की अद्भुत
ो ध्वनि के साथ वर्ण, गध, स्पर्श एव गति से भी बिम्बो को ग्राह्य बनाने
ातुरी पन्त मे है। अंग्रेजी के सभी स्वच्छन्दतावादी कवियो से बढ कर
ा सूक्ष्म अकन करने वाले वर्ड्सवर्थ की कला उसी क्षेत्र मे पन्त के समक्ष
ती है। उदाहरणार्थ—

'हेब्रॅइस के सुदूर प्रान्तों मे,
अम्बुधियो की नीरवता को चीरकर
आने वाला कोकिल का वैसा पुलकाकुल स्वर,
कभी न सुना गया वसन्त की वेला मे।'''

—वर्ड्सवर्थ

× ×

''विहग कुल की कलकण्ठ हिलोर
मिला देती भू नभ के छोर''

''पपीहो की वह पीन पुकार,
निर्झरो की भारी झर-झर,
झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु गम्भीर घहर,
बिन्दुओं की छनती छनकार,
दादुरो के वे दुहरे स्वर।''

—पन्त

ि वर्ड्सवर्थ से भी पन्त का ध्वनि-परिज्ञान अधिक सूक्ष्म है।
व, बिम्बो का अकन, सौन्दर्य-बोध एव कल्पना-वैभव की
से भी उच्च पद के अधिकारी हैं। 'टिन्टर्न अबी', 'प्रिल्यूड'
रचनायें हैं।

s ne'er was heard
n the cuckoo-bird,
ice of the seas
hest Hebrides"

—Wordsworth

बाइरन और पन्त के कृतित्व मे कोई आन्तरिक या बाह्य साम्य नहीं मिलता। वास्तव मे बाइरन स्वच्छन्दतावाद का कवि न होकर, उससे प्रभावित होने वाला विद्रोह एव क्रान्ति का कवि है। उसमे पन्त की शान्त स्निग्ध कोमलता कहाँ? और पन्त मे बाइरन की प्रबल आवेगमय तीव्रता कहाँ? बाइरन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व मे विद्रोह का स्वर इतना मुखर है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा मे उसका एक स्वतन्त्र स्थान है। कुछ अन्य कवियो की भाँति वह अपने काव्य मे आध्यात्मिकता एवं नैतिकता का आरोप नहीं करता, किन्तु पन्त ने कहीं-कहीं दर्शन का अवलम्बन अवश्य ग्रहण किया है। बाइरन का व्यक्तित्व अधिक शक्तिशाली एव प्रभावशाली था। यौवन, प्रेम एव अतीत से उसने काव्य-प्रेरणा ग्रहण की है तो पन्त ने प्रकृति निरीक्षण से। बाइरन का दृष्टिकोण यथार्थवादी एव व्यावहारिक अधिक है तो पन्त का आदर्शवादी। एक मे यौवन की विलासिता एव मादकता है तो दूसरे मे यौवन का पावन उल्लास। बाइरन की उपमाओ एव प्रतीको मे कवि का उन्मुक्त स्वरूप ही अधिक निखर आया है। उसके स्वभाव मे अल्हडपन है तो पन्त मे बालक की सी सरलता। बाइरन की कविता मे अन्योक्ति एव व्यग्य भी अधिक मात्रा मे मिलते हैं तो पन्त मे व्यग्य केवल उनके 'पल्लव' के 'प्रवेश' में ही मिलता है, काव्य में नही। बाइरन के सम्पूर्ण कृतित्व मे भावनाओ का तीव्र वेग एव सौन्दर्य का तन्मय अंकन पाया जाता है तो पन्त मे संयमित सौन्दर्य की छटा है। नीचे के उद्धरण मे बाइरन का सौन्दर्यवादी स्वरूप ही झलकता है—

'सौन्दर्य में चलती है वह, मेघ-हीन
वातावरण औ नक्षत्रोज्वल गगन से
शोभायमान रजनी के समान।"[1]

—बाइरन

काव्य-कला के क्षेत्र मे भी दोनो कवियो मे पार्थक्य है। बाइरन को अपने भाव प्रकाशन के लिये अलकरण की आवश्यकता नही थी। कवि के हृदय से भाव वर्षाकालीन नदी-प्रवाह की भाँति दुर्निवार वेग एव नैसर्गिक शक्ति के साथ फूट पडते है। अत. बाइरन की कविता मे कवि का प्रखर व्यक्तित्व ज्यो का त्यो उतर सका है। अपनी कविता की पक्तियो को सुधारने एव उनमे कलात्मकता लाने की प्रवृत्ति

1 "She walks in beauty, like the night
Of cloudless climes and starry skies."

दोनो कवियों द्वारा अपने वर्ण्य विषयो का मानवीकरण कर उनमे मानवीय भावनाओ का आरोप करना द्रष्टव्य है। पंत स्वयं अपने मन को विश्व वेदना के ताप मे तपने को उद्बोधित करता है—

"विश्व वेदना मे तप प्रतिपल
जग जीवन की ज्वाला मे गल"

—तप रे : गुंजन

"रिवोल्ट आफ इस्लाम" और "प्रोमेथियस अन्बाउण्ड" आदि रचनाओ मे शेली ने काव्य के द्वारा मानवता को सुन्दरतम भावनाये देने का सफल प्रयास किया है। जहाँ एक ओर शेली ने चद्रमा, अप्सरा, पृथ्वी के विविध प्रतीको के प्रयोग से "प्रोमेथियस अन्बाउण्ड" का सुन्दर रूपक का निर्माण कर, मानवता की मुक्ति, भ्रातृत्व, प्रेम, स्वातन्त्र्य, समानता, आध्यात्मिकता एवं पावनता का सदेश दिया है तो दूसरी ओर पन्त ने इन्दु, सुरभि, ज्योत्स्ना, स्वप्न, कल्पना आदि प्रतीको के प्रयोग से "ज्योत्स्ना" की सृष्टि कर विश्व मे प्रेम का नवल स्वर्ग, सौन्दर्य का नवीन आलोक एव जीवन का विमल आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया है। प्रकृति के प्रति मोह, सगीत के प्रति आकर्षण इन दोनो कवियो को और भी निकट ला देते हैं। सूक्ष्म अकन की कला दोनो मे ऊँची कोटि की है।

इतना साम्य होते हुए भी शेली और पन्त मे पर्याप्त विभिन्नतायें भी हैं। पन्त-काव्य की मर्मज्ञ आलोचिका शचीरानी गुर्टू के शब्दो मे "शेली के मनोवेगों का विस्फोट दुर्निवार है, पन्त मे अपेक्षाकृत गभीरता और भावसघनता है। शेली के अन्तर मे भावनाओ की प्रचण्ड आंधी-सी उठती है, जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एक साथ गीतो मे फूट पडती है—पन्त का आवेश कल्पना की मधुर थपकियो मे बिखर जाता है और उनके भावो की गति भाषा की गति के साथ समरस होकर आगे बढती है। शेली मे धुआँ-धार अप्रतिहत वेग है, पन्त मे अपूर्व धारा-प्रवाह है। शेली बाह्य-सौन्दर्य पर मुग्ध है, पन्त आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के सवेदनशील द्रष्टा हैं। शेली मे सूक्ष्म-अगम्यता है, पन्त व्यजना की अनन्त सीमायें उद्घाटित करते हैं और उनके कल्पना-चित्र स्वप्न और सत्य, अनुभूति और इन्द्रियबोध के आत्यन्तिक प्रतीक बनकर प्रकट होते हैं। शेली के हृदय मे सृजन की स्फूर्ति और स्वप्न-निर्माण का वैभव है, पन्त मे आध्यात्मिक चेतना और वस्तुसत्य के समन्वय का कौतूहल। एक की दृष्टि आकाश की ओर एकटक निहार रही है, दूसरे की नीचे-ऊपर के सूक्ष्म सत्यों को जानने को सतत उत्सुक। एक मे भावोन्मेष के परिष्कार की प्रवृत्ति है,

'तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैं ने कोमल वपु भरा गोद
था आत्म समर्पण सरल, मधुर
मिल गए सहज मारुतामोद।'

—प्रथम मिलन : पंत

(२) "या थकित इन्दु जब थकित होकर
ऊपर को धरती पग मथर,
पहन धवल-घन-वसने सुंदर
शोभित होती ज्यों धार मधुर
विश्रान्ति दिवस के वसने धर।"[1] —कीट्स

"लहरों के घूँघट से झुक-झुक,
दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख
दिखलाता मुग्धा-सा रुक-रुक।" —नौका विहार : पंत

द्वितीय उद्धरण में कीट्स का बिम्ब विशद एवं पावन है तो पंत के बिम्ब में लज्जा एवं प्रेम का माधुर्य है।

ये दोनों कवि एवं कलाकार काव्य-कला की दृष्टि से भी अत्यन्त निकट प्रतीत होते है। दोनों कवि अपने प्रगीतों में अत्यन्त प्राजल एवं परिष्कृत शब्दों का प्रयोग करते है। उनके चित्रों या बिम्बों में कहीं धूमिलता एवं अस्पष्टता नहीं मिलती। वे अपने शब्दों के सगीत के द्वारा ही चित्र में प्राण फूँक कर उसे सजीव कर देते है। सौन्दर्यांकन एवं शब्द-शिल्प में दोनों कवि अद्वितीय है। 'भावी पत्नी', 'ज्योत्स्ना' और 'इन्दु' के चित्रों में कीट्स की कला पंत में मूर्तिमान हुई है। दोनों की कविता में यत्र तत्र उनके काव्यमय जीवन की कसक एवं निराशा की झलक मिलती है। कीट्स का "ओड टु दि नाइटिंगेल" तथा पंत के "ग्रन्थि" और "परिवर्तन" आदि उक्त कथन का समर्थन करते है।

किन्तु कीट्स और पंत में अधिक पार्थक्य भी है। जहाँ कीट्स सौन्दर्य और ... को लेकर चलता है, वहाँ पंत शिव को भी प्रधानता देता है। यदि कीट्स

---

[1] "Of the coy moon, when in the weariness
Of whitest clouds she does her beauty dress,
And stadily paces higher up, and higher
Like a sweet nun in holiday attire."

—*Keats : To My Brother George.*

पन्त जी की कल्पना-शक्ति अत्यन्त विकसित है और कवि ने इसके एक मोहक, पावन सौन्दर्य-लोक की सृष्टि की है। सजीव कल्पना एवं सौन्दर्य का सामञ्जस्य जितनी अधिक मात्रा में उनके काव्य में मिलता है उतना हिन्दी के और किसी कवि या लेखक में नहीं। अतः काव्य-कला, प्रकृति-चित्रण, कल्पना-वैभव एवं सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से निस्सन्देह वे हमारे साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

किन्तु मानव-जीवन की विविध अनुभूतियों, परिस्थितियों एवं संघर्षों को पहचान कर उन्हें अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति उनमें देखने को नहीं मिलती। हमें देखना होगा कि कवि क्या दे सकता था और उसने क्या दिया है। कवि पन्त ने जिसका अनुभव किया है, जिन सत्यों की खोज की है, उन सभी को उन्होंने हिन्दी-काव्य को ईमानदारी के साथ दे दिया है। अपनी भावों की उज्ज्वलता एवं उदात्तता, स्वच्छता एवं चिरन्तनता के कारण वे एक महाकवि के पद के अधिकारी हैं। इस कवि एवं विचारक, कलाकार एवं दार्शनिक, प्रेमी एवं स्वप्न द्रष्टा, रसिक एवं सन्त की आत्मा से प्रसूत सरस संयमित सुकोमल रचनायें काल के दुर्दान्त आघातों को सहन कर अपने कृतिकार के उज्ज्वलतम प्रकाश को प्रकाशित कर रही हैं और अनन्त तक करती रहेंगी। ऐसे उज्ज्वलतम महाकवि को पाकर, जिन्होंने अपने जीवन के तुच्छ स्वार्थों की बलि देकर, अपने साहित्य एवं मानवता की सेवा के निमित्त ऊपर उठकर सरस्वती के सदन में एकान्त साधना कर स्वयं अपने को काव्य में रख दिया है, विश्व का कोई भी साहित्य गर्व कर सकता है। पन्त जी के कृतित्व पर हिन्दी-संसार सदा के लिये गर्व करता रहेगा। ईश्वर करें, इस ज्योतिर्मय कवि की प्रकाश किरणें भारत के क्षितिज को पार कर सम्पूर्ण विश्व के कोने-कोने में अपने आलोक को बिखेर दें।

सहायक ग्रन्थ

(क) पत की कृतियाँ

१. वीणा
२. ग्रन्थि
३. पल्लव
४. गुंजन
५ ज्योत्स्ना
६. युगान्त
७. पल्लविनी
८. चिदम्बरा
९. आधुनिक कवि—२

(ख) अन्य काव्य ग्रन्थ

१० कामायनी—श्री जयशंकर प्रसाद।
११. आँसू—श्री जयशंकर प्रसाद।
१२. अपरा—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"।
१३. आधुनिक कवि—१—श्रीमती महादेवी वर्मा।
१४. रामचरित मानस—गोस्वामी तुलसीदास।
१५. विद्यापति की पदावली—विद्यापति।
१६. भ्रमरगीत सार—सूरदास।
१७ प्रियप्रवास—अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"।

(ग) पत की आलोचना

१८ सुमित्रानन्दन पत—डा० नगेन्द्र।
१९ सुमित्रानन्दन पत—विश्वम्भर मानव।
२० सुमित्रानन्दन पत—शचीरानी गुर्टू (सक्सन)।
२१. ज्योति-विहग—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी।
२२. श्री सुमित्रानन्दन पत—स्मृति चित्र।

(घ) हिन्दी साहित्य

२३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
२४. चिन्तामणि पहला भाग—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
२५. हिन्दी का सामयिक इतिहास—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
२६. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—श्री जयशंकर प्रसाद।
२७. युग और साहित्य—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी।
२८. आधुनिक साहित्य—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।
२९. प्रसाद का काव्य—डा० प्रेमशंकर।
३०. विश्व साहित्य—पदुमलाल-पुन्नालाल बख्शी।
३१. *निबन्ध-संग्रह—डा० श्रीकृष्णलाल एण्ड डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।*
३२. संस्कृत साहित्य का इतिहास—बलदेव उपाध्याय।

(ङ) English Books

33. A History of English Literature—Legouis and Cazamain
34. A History of English Literature—Campton-Rickett.
35. Poetic Image—C. Day Lewis.
36. The Romantic Imagination—C. M. Bowra.
37. Inspiration and Poetry—C. M. Bowra.
38. Poetry and Criticism of the Romantic Movement—Edited by G. J. Campbell and others.
39. Poetical Works—Wordsworth.
40 *Poetical Works—Byron.*
41. Poetical Works—Shelley.
42. poetical Works—Keats.
43. Complete Works of Shakespeare.
44. A History of Bengali Literature—S. K. Sen.
45. Keats and Shakespeare—Middlet on Murray.